ईंट भट्ठों में प्रचलित पुरानी तकनीक, सामाजिक संबंध और नए प्रयोग

'ईंट भट्ठों में सम्मानजनक श्रम और पर्यावरण-अनुकूल ईंट उद्योग हेतु समुदाय-आधारित सामाजिक संगठनों का सशक्तिकरण'
परियोजना के तहत किया गया शोध अध्ययन

जे. जॉन

BUILDING A WIDER HORIZON CEC WITH LABOUR
प्रयास Prayas
terre des hommes Help for Children in Need
Funded by the European Union

ईंट भट्ठों में प्रचलित पुरानी तकनीक, सामाजिक संबंध और नए प्रयोग

© सेंटर फॉर एजुकेशन ऐण्ड कम्युनिकेशन

मार्च 2018

प्रकाशक
सेंटर फॉर एजुकेशन ऐण्ड कम्युनिकेशन (सीईसी)
173-ए, खिड़की गांव, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110007
टेलीफोन : 91 11 29541841/29541858
फैक्स : 91 11 29542464
वेबसाइट : www.cec-india.org

कॉपी एडिटिंग एवं डिजाइनिंग
दि इन्फॉर्मेशन ऐण्ड फीचर्स ट्रस्ट (टिफ्ट)
लक्ष्मी (कयदम), थोंडियाड, शिवरम्बलम (पीओ), कालीकट - 673017
मोबाइल : +91 9526577902
ई-मेल : pksindhumenon@gmail.com

ISBN : 81-88160-22-9

यह रिपोर्ट 'भारत के ईंट भट्ठों में सम्माजनक श्रम एवं पर्यावरण-अनुकूल ईंट उद्योग हेतु समुदाय-आधारित सामाजिक संगठनों का सशक्तिकरण' परियोजना के तहत किए गए अध्ययन पर आधारित है। इस परियोजना को प्रयास एवं टेरे डे होम (टीडीएच) की साझेदारी में और यूरोपीय युनियन (ईयू) की आर्थिक सहायता से लागू किया जा रहा है। इस प्रकाशन में व्यक्त किए गए विचार अनिवार्य रूप से यूरोपीय यूनियन के विचार नहीं हैं।

"...जाति व्यवस्था सिर्फ श्रम के विभाजन की व्यवस्था नहीं है। यह श्रमिकों के विभाजन की व्यवस्था भी है। एक विकसित हो रहे समाज में श्रम विभाजन निःसंदेह जरूरी होता है, मगर किसी भी ऐसे समाज में श्रम विभाजन के साथ श्रमिकों की इस तरह सख्त खानाबंदी बिल्कुल अस्वाभाविक होती है। जाति व्यवस्था सिर्फ मजदूरों के विभाजन की व्यवस्था नहीं है। यह श्रम विभाजन से भिन्न है।यह ऊंच-नीच की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें मजदूरों के तबकों को एक-दूसरे के ऊपर रखकर बांटा जाता है। ...एक ऐसी व्यवस्था में क्या कुशलता हो सकती है जिसमें न तो मनुष्य का दिल और न ही उसका दिमाग उसके काम में लगा हो? लिहाजा, एक आर्थिक व्यवस्था के तौर पर जाति नुकसान पहुंचाने वाली संस्था है क्योंकि इसमें मनुष्य की नैसर्गिक शक्तियों और प्रवृत्तियों को भी सामाजिक नियमों की जरूरतों के मातहत रखा जाता है"।

- डॉ. बी. आर. अंबेडकर, *जाति का उन्मूलन*, पृष्ठ 46-47

विषय सूची

आभार **5**

आमुख **7**

प्रस्तावना **9**

ईंट भट्ठों में जातिगत श्रम विभाजन **13**

भारत के ईंट भट्ठों के बारे में सामान्य जानकारियां **13**

ईंट निर्माण की तकनीक **15**

पकाने के पहले की प्रक्रियाएं 15

भारत में जलाई आधारित ईंट निर्माण 15

शोध-अध्ययन के नतीजे **18**

आरंभिक शोध-अध्ययन से निकले तथ्यों का सारांश 19

समस्या पर एक नई नजर **19**

ईंट भट्टों की स्थिति को परिभाषित करने की समस्याएं **20**

नए प्रयोग और समाज पर उनके असर **22**

प्राचीन और मध्यकालीन भारत में ईंट भट्ठे और सामाजिक संबंध **25**

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो 25

प्राचीन भारत में दास प्रथा 26

दिल्ली सल्तनत और मुगलों के दौर 27

कुम्हार : मिट्टी के सामान और ईंट बनाने वाले कारीगर व श्रमिक 27

ईंट, अंग्रेजी साम्राज्यवाद और नए अनुसंधान व प्रयोग **28**

अंग्रेजों के दौर के भारत में नहरों का निर्माण और ईंटों की जरूरत 29

भारतीय रेल व्यवस्था का निर्माण और ईंटों की जरूरत 30

ईंट निर्माण की व्यवस्था में हुए नए प्रयोग 31

भट्ठों में मजदूरों को लाने की नई व्यवस्था 33

मजदूरों को लुभाने के लिए पेशगी के सवाल 33

जत्था-केंद्रित कामकाज और जत्थेदारों का उदय 33

जाति आधारित जत्थे 34

ईंट भट्ठों में बंधुआ मजदूरी 34

ग्रामीण गरीबी और आपूर्ति-प्रबंधन 35

अठारहवीं व उन्नीसवीं सदी के इंगलैंड में ईंटों का उत्पादन 37

इंगलैंड के ईंट-उत्पादन में आए नए तकनीकी बदलाव 40

बुल्स ट्रैंच भट्ठा : भारत में साम्राज्यवादी आविष्कार **42**

निष्कर्ष **46**

ग्रंथ सूची **48**

आभार

मैं सीईसी के शोध अधिकारी प्रीतम सैकिया का बेहद आभारी हूं जिन्होंने राजस्थान, उत्तर प्रदेश और हरियाणा के ईंट भट्ठों में शोध अध्ययन किया है। उनके अलावा मैं रुचि गुप्ता, मीना शर्मा, जावेद मंसूरी, जावेद इकबाल और प्रसाद आर. का भी धन्यवाद अदा करता हूं जिन्होंने परियोजना के विभिन्न चरणों में मुझे अलग-अलग ढंग से सहायता दी। मैं एस गुणाशेखरन एवं पल्लवी मानसिंह की टिप्पणियों और सुझावों के लिए उनका भी तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूं। विशेष रूप से मैं सीईसी के कार्यकारी निदेशक आरती पांडया का धन्यवाद अदा करता हूं जिन्होंने पूरे अध्ययन के दौरान धैर्य रखा और बेहद महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

- जे. जॉन

नई दिल्ली

23 दिसंबर, 2017

आमुख

हमारे देश में ईंटों का उत्पादन सदियों से चला आ रहा है। इसका इतिहास सिंधु घाटी सभ्यता तक जाता है जिसके अवशेषों में ईंटें भी पाई गई हैं। इस बारे में स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि उस समय इसके लिए क्या तकनीक इस्तेमाल की जाती थी, मगर वर्तमान भारत में सबसे ज्यादा प्रचलित तकनीक *फिक्स्ड चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न* (एफसीबीटीके) ही है। इसके बाद कुछ हद तक क्लैम्प तकनीक का भी इस्तेमाल किया जा रहा है। इतिहास के पन्नों को पलटने पर पता चलता है कि अंग्रेजों के आने से पहले भारत में क्लैम्प तकनीक ही चला करती थी, जबकि एफसीबीटीके तकनीक 1876 में डब्ल्यू बुल नामक एक अंग्रेज इंजीनियर द्वारा ईजाद की गई थी। हैरत की बात है कि इस तकनीक में तब से आज तक बहुत ही कम बदलाव या परिष्कार हुए हैं।

पकाई गई मिट्टी से बनने वाली ईंटों के उत्पादन के मामले में भारत विश्व में दूसरे स्थान पर आता है। भारत में 1.5 से 2 लाख भट्ठे हैं जो कुल वैश्विक उत्पादन का 10 प्रतिशत पैदा करते हैं। असम, बिहार, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में भट्ठा उद्योग बहुत सारे लोगों की आजीविका का मुख्य स्रोत है। इन राज्यों में 1.5 से 2 करोड़ तक लोगों को रोजगार मिला हुआ है।

हैरानी की बात यह है कि अभी भी इस उद्योग को सबसे परंपरागत और अनौपचारिक क्षेत्र की श्रेणी में ही गिना जाता है जहां तकनीकी सुधार बहुत कम हुए हैं, मशीनीकरण की रफ्तार बहुत धीमी है और श्रम संबंधों में लैंगिक, सामंती संबंध हावी हैं। जाति आधारित श्रम विभाजन, पेशगी के आधार पर मजदूरों की भर्ती, पीस रेट (इकाई दर) के आधार पर मजदूरी का हिसाब-किताब, महिला मजदूरों को मजदूर के रूप में मान्यता न मिलना, बाल मजदूरी - ये सब भट्ठा उद्योग पर हावी हैं। इनमें से ज्यादातर ऐसी चीजें हैं जो मौजूदा सामाजिक संबंधों को बरकरार रखती हैं और मजदूरों के शोषण की आशंका को बढ़ाती हैं। ऊपर से, यह उद्योग बड़े पैमाने पर वायु प्रदूषण पैदा करता है। इसमें श्रम कानूनों के उल्लंघन और अवहेलना की तो सीमा ही नहीं है।

जमीनी स्तर से मिली जानकारियों से ऐसा लगता है कि भट्ठों के मालिक नई तकनीक में इसलिए निवेश नहीं करना चाहते क्योंकि उन्हें सरकारी नियमों और नीतियों में अनिश्चितता का डर सताता रहता है। उन्हें लगता है कि पर्यावरणीय नीतियों और नियमों की वजह से उनका भट्ठा कभी भी बंद हो सकता है। दूसरी तरफ यह भी सच है कि इस उद्योग के परंपरागत एवं अनौपचारिक स्वरूप को बढ़ावा देने वाली स्थितियों के बारे में विस्तृत शोध ज्यादा नहीं हुए हैं।

इसी पृष्ठभूमि में सेंटर फॉर एजुकेशन ऐण्ड कम्युनिकेशन (सीईसी) ने स्थिति की व्यवस्थित पड़ताल का फैसला लिया ताकि यह समझा जा सके कि ईंट भट्ठों की तकनीक में सुधार क्यों नहीं आ रहे हैं और इसका औद्योगिक संबधों, जो प्रचलित जाति आधारित सामाजिक संबंधों से अलग-थलग नहीं हैं, से क्या रिश्ता है। इसके लिए सीईसी ने इस प्रस्थापना के आधार पर काम किया कि तकनीक में सुधार की भट्ठा मालिकों की क्षमता इस पर निर्भर करती है कि वे सूचनाओं के प्रवाह के आधार पर श्रम बाजार में कितनी मदद दे पाते हैं और जाति, खानाबंदी, बंधुआ मजदूरी, ठेकेदारी और लैंगिक सामंती संबंधों की बजाय श्रम मानकों और कौशल के सम्मान पर आधारित औद्योगिक संबंधों की क्या स्थिति है?

सीईसी द्वारा यूरोपीय युनियन की आर्थिक सहायता से चलाई जा रही परियोजना 'भारत के ईंट भट्ठों में पर्यावरण-अनुकूल ईंट उद्योग और सम्माजनक श्रम हेतु समुदाय आधारित सामाजिक संगठनों का सशक्तिकरण' परियोजना के तहत किए गए प्रस्तुत अध्ययन में इस बात का विश्लेषण किया गया है कि हमारे देश के भट्ठा उद्योग के इतिहास में किस-किस तरह के प्रयोग हुए हैं। इससे यह समझने में मदद मिली है कि ईंट भट्ठा उद्योग में तकनीक सुधारों की रफ्तार इतनी धीमी क्यों है, जबकि कई दूसरे क्षेत्रों में तकनीकी सुधारों की रफ्तार काफी तेज रही है।

सभी संबंधित पक्षों को हालात से वाकिफ कराने के पहले कदम के तौर पर सीईसी ने इस अध्ययन के नतीजों को दिल्ली में एक औपचारिक बैठक में पेश किया और सभी सहभागियों से सुझाव लिए। इन सुझावों को भी प्रस्तुत रिपोर्ट में शामिल किया गया है। हमें पूरा विश्वास है कि यह रिपोर्ट भट्ठा उद्योग के परंपरागत और अनौपचारिक स्वरूप को बनाए रखने के लिए जिम्मेदार हालात के बारे में सभी संबंधित पक्षों को सही जानकारी देगी। इससे लोगों को पता चलेगा कि भट्ठा उद्योग में अभिनव प्रयोगों की कमी इस उद्योग में औद्योगिक संबंधों से गहरे तौर पर जुड़ी हुई है (जो कि जाति आधारित सामाजिक संबंधों से भिन्न नहीं है)। सीईसी उम्मीद करता है कि इस रिपोर्ट के नतीजे नए विकल्पों पर चर्चा को आगे बढ़ाने और भट्ठा उद्योग में अभिनव प्रयोगों को आगे बढ़ाने में योगदान देंगे जिससे मजदूरों और मालिकों - दोनों को लाभ मिलेगा।

यह अध्ययन श्री जे. जॉन द्वारा किया गया है। इसमें उन्हें प्रीतम सैकिया, तत्कालीन वरिष्ठ एमआईएस अधिकारी, सीईसी से मदद मिली है। मैं शोधकर्ताओं को यह अहम दस्तावेज तैयार करने के लिए की गई उनकी सारी कोशिशों के लिए आभार प्रकट करती हूं।

- आरती पांडया
कार्यकारी निदेशक
सेंटर फॉर एजुकेशन ऐण्ड कम्युनिकेशन
5 मार्च, 2018

प्रस्तावना

आग में पका कर बनाई जाने वाली ईंटों के उत्पादन में चीन के बाद भारत दूसरे स्थान पर आता है। चीन में ईंटों के उत्पादन में आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। वहां इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि भट्ठों से कम धुंआ पैदा हो। भारत में अभी ऐसी स्थिति दिखाई नहीं दे रही है। इसके लिए चीन में हॉफमैन किल्न या टनल किल्न का इस्तेमाल किया जा रहा है। एनएसएसओ या एन्युअल सर्वे ऑफ इंडस्ट्रीज की तरफ से इस बारे में कोई अधिकृत आंकड़े नहीं मिलते कि भारत के कितने भट्ठों में ईंटें बनाई जाती हैं। इसके बारे में सिर्फ अनुमान ही मिलते हैं। ऑल इंडिया ब्रिक मेन्युफेक्चरर्स एसोसिएशन द्वारा जारी किए जाने वाले आंकड़ों के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि भारत में हर साल 247.87 अरब ईंटें बनती हैं जिनमें से लगभग 74.64 प्रतिशत ईंट 'फिक्स्ड चिमनी बुल्स' ट्रेंच किल्न (एफसीबीटीके) तकनीक से बनाई जाती हैं। भारत ही नहीं, बल्कि पाकिस्तान, बांगलादेश, नेपाल और अफगानिस्तान में भी यही तकनीक सबसे ज्यादा प्रचलित है। इसके अलावा 20.17 प्रतिशत ईंटें 'क्लैम्प किल्न' तकनीक से बनाई जाती हैं। एक जमाने में यह पद्धति दुनिया भर में प्रचलित थी, मगर अब लगभग सभी देश इसे छोड़ चुके हैं। इस तकनीक के साथ दो समस्याएं होती हैं। एक बात तो यह है कि इसमें कोयले की खपत बहुत ज्यादा होती है। दोनों ही तकनीकों से गर्मी बहुत ज्यादा पैदा होती है और दोनों ही तकनीक बहुत बड़े पैमाने पर हानिकारक कण (च्ड10 एवं च्ड2.5) पैदा करती हैं। भट्ठा उद्योग कार्बन डाइऑक्साइड और ब्लैक कार्बन सबसे ज्यादा मात्र में पैदा करते हैं। इनसे बहुत ज्यादा ग्रीन हाउस प्रभाव पैदा होता है। ऐसे भट्ठों पर मजदूर बहुत घनी धूल में काम करते हैं। उन्हें तेज गर्मी में खुले में काम करना पड़ता है। दूसरी बात यह है कि भारत (और अन्य दक्षिणी एशियाई देशों) के भट्ठे पर्यावरण के लिए हानिकारक, तकनीकी तौर पर अक्षम और पेशागत खतरों का स्रोत होने के साथ-साथ बहुत अपमानजनक और निकृष्ट रोजगार संबंधों के लिए भी जाने जाते हैं। ये भट्ठे अक्षम बंधुआ मजदूरी और गुलामी जैसे हालात को जन्म देते हैं। भट्ठे आम तौर पर मौसमी आधार पर चलते हैं और इनमें काम करने वाले ज्यादातर मजदूर गृह राज्य या दूसरे राज्यों से आए प्रवासी मजदूर होते हैं। ज्यादातर मजदूर, खासतौर से गारा तैयार करने और और सांचे में ईंट ढालने वाले मजदूर, बंधुआ मजदूर होते हैं क्योंकि उन्हें रोजाना 12 से 18 घंटे तक काम करना पड़ता है ताकि वे मौसम की शुरुआत में ठेकेदार से ली गई पेशगी को चुकता कर सकें। उनमें से ज्यादातर लोग एक मौसम में यह पैसा अदा नहीं कर पाते। कहने को तो भट्ठों में मजदूरी श्रम या कौशल पर आधारित कही जाती है, मगर वास्तव में भट्ठो में कौशल जातिगत ऊंच-नीच पर आधारित होता है। इसी का नतीजा है कि आम तौर पर गारा और कच्ची ईंटें दलित और आदिवासी मजदूर बनाते हैं, जबकि पकाने वाले ज्यादातर ऊंची जातियों के लोग होते हैं। इस श्रम विभाजन का एक लंबा इतिहास रहा है और देखने में आया है कि आप मनचाहे ढंग से इस श्रम विभाजन को पलट नहीं सकते। इसका एक कारण यह भी है कि इन जातियों के लोग एक-दूसरे के साथ रहने और खाने-पीने से परहेज करते हैं। लिहाजा वे एक-दूसरे के साथ काम करने और एक-दूसरे को अपना काम सौंपने से भी बचते हैं।

मजदूरों के बीच होने वाला यह जातिगत श्रम विभाजन ही इस पर्चे का मुख्य विषय है। क्या भारत (और दक्षिण एशिया) के भट्ठा उद्योग में प्रचलित जाति आधारित श्रम संबंधों और बंधुआ मजदूरी का ईंट उत्पादन की प्रचलित तकनीक के साथ कोई संबंध दिखाई पड़ता है? इसी से जुड़ा अगला प्रश्न यह है कि भारत के ईंट भट्ठों में तकनीकी सुधार क्यों नहीं हो पाए हैं? क्या भारत के भट्ठों में जाति आधारित भर्ती व्यवस्था ही ऐसी नई तकनीकों को अपनाने से रोक रही है जिनको दुनिया भर के भट्ठों में अपनाया जा चुका है? भारत के संदर्भ में इस समस्याग्रस्त क्षेत्र का कभी अध्ययन नहीं किया गया, जिसकी वजह संभवतः यह है कि यहां जाति आधारित पेशों और बंधुआ मजदूरी को भट्ठा उद्योग की सामान्य व्यवस्था मान लिया गया है। शायद इसी कारण भट्ठों को 'कारीगरी आधारित उद्योग', 'अनौपचारिक', 'परंपरागत', 'असंगठित', आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है। इसी मान्यता के साथ जुड़ी एक मान्यता यह है कि 'यह स्थिति सदियों से न सही, मगर दशकों से ऐसी की ऐसी चली आ रही है।' साल 2014 में हैदराबाद में बीबीसी के एक रिपोर्टर (हम्फ्री हॉक्स्ले) ने भट्ठा मजदूरों के हालात का इसी तरह ब्योरा दिया था। इसकी दूसरी वजह वे वैचारिक पूर्वाग्रह भी हो सकते हैं जिनके अनुसार तकनीकी बदलावों से सामाजिक संबंधों में बदलाव नहीं आ सकता। प्रस्तुत रिपोर्ट में भारत के भट्ठा उत्पादन क्षेत्र में तकनीकी सुधारों व आविष्कारों के अभाव और जाति आधारित श्रम विभाजन के संबंधों का दो स्तरों पर विश्लेषण किया गया है।

पहले चरण में हमने आनुभविक धरातल पर इस मान्यता का विश्लेषण किया है कि भट्ठों की जातिगत संरचना नई तकनीक को अपनाने पर बदल जाती है। क्लैम्प किल्न, फिक्सड (एवं मूविंग/चलायमान) चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न, डाउन-ड्रॉट किल्न एवं टनल किल्न के अध्ययन से पता चलता है कि जब ईंट उत्पादन की तकनीक में

सुधार आता है, तब जातिगत श्रम विभाजन की खानाबंदी भी टूटने लगती है। तकनीक जितनी ऊंची या परिष्कृत होती है, दलितों और आदिवासियों को ऐसे काम करने को मिलने लगते हैं जो पुरानी तकनीक वाले भट्ठों में उन्हें नहीं मिलते थे। फिर भी, इन नतीजों के साथ कुछ बातों का हमें ख्याल रखना होगा। कुम्हार जाति के भट्ठा मालिकों द्वारा चलाए जा रहे क्लैम्प किल्न वाले भट्ठों में जातिगत विभाजन इतना सख्त दिखाई नहीं देता। यह सख्त विभाजन तो बुल्स ट्रेंच किल्न के साथ शुरू हुआ जो इस बात को दर्शाता है कि यह एक नया प्रयोग था और ईंट उत्पादन की परंपरागत पद्धतियों से एक विच्छेद था। दूसरी तरफ जाति आधारित पेशागत श्रेणीबद्धता तकनीक में सुधार के साथ अनिवार्य रूप से खत्म नहीं होती।

इसके बाद हम अपने विश्लेषण के दूसरे चरण में पहुंचते हैं जहां हमने इस सवाल पर विचार किया कि 'बुल्स ट्रेंच किल्न' की तकनीक कहां और क्यों लागू की गई, इससे क्या फायदे हुए, इसका आविष्कार किन लोगों ने किया और बुल्स ट्रेंच किल्न तकनीक में जाति आधारित श्रम विभाजन किस तरह इतना पुख्ता होता चला गया। इन सारे पहलुओं पर पांच हिस्सों में पड़ताल की गई है। पहले हिस्से में ईंट भट्ठों से संबंधित सूचनाओं में असंगति पर गौर किया गया है जोकि भट्ठों की स्थिति को परिभाषित करने के दौरान पैदा होने वाली अस्पष्टता का परिणाम है। हालांकि सरकारी और अकादमिक दस्तावेजों में ईंट उत्पादन निर्माण का उद्योग की वृद्धि या गिरावट के साथ सीधा संबंध दिखाई देता है, मगर भट्ठों के बारे में सीधी सूचनाएं फिर भी स्पष्ट दिखाई नहीं पड़तीं। मौजूदा अध्ययन में इस बात की तरफ इशारा किया गया है कि यह असंगति भट्ठों को एक आर्टिजनल/दस्तकारी उद्योग के रूप में देखने का नतीजा है। लिहाजा भले ही राष्ट्रीय औद्योगिक वर्गीकरण (एनसीओ 2008) कोड्स में भट्ठों को 'मिट्टी, बजरी, पत्थर या रेत जैसे गैर-धातु खनिज पदार्थों से निर्मित अथवा अंतिम उत्पादों का निर्माण' करने वाले उद्योग के रूप में वर्गीकृत किया गया है मगर एनुअल सर्वे ऑफ इंडस्ट्रीज (एएसआई) तथा अन्य सांख्यिकी स्रोतों में इन प्रतिष्ठानों को पूरी जगह नहीं मिलती। नतीजतन, सबसे पहले तो भट्ठों को प्रशासकीय व कानूनी पाबंदियों से बचने का रास्ता मिल जाता है, जबकि कायदे से भट्ठे भी विभिन्न कानूनों और विभिन्न विभागों के नियमों के तहत आते हैं। दूसरी बात यह है कि भारत में भट्ठों की कुल संख्या वास्तविकता से बहुत कम दर्ज की जा रही है। तीसरी बात यह कि भट्ठों से वायुमंडल, मिट्टी और पानी में बड़े पैमाने पर प्रदूषण फैलता है और चौथी बात यह है कि भारत के ईंट भट्ठों में 'बंधुआ मजदूरी' और 'दास श्रम' का चलन बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ है।

दूसरे भाग में नए-नए प्रयोगों के सिद्धांतों पर चर्चा की गई है और इस पर बात की गई है कि ये कैसे प्रासंगिक हो सकते हैं और भट्ठों में इन्हें कैसे लागू किया जा सकता है। इस भाग में 'अभिनव प्रयोग' या 'इनोवेशन' के अर्थ और प्रासंगिकता पर चर्चा की गई है, उसे फर्म, बाजार और उपभोक्ता के साथ जोड़कर देखा गया है। इनोवेशन्स से आर्थिक और सामाजिक बदलावों में कैसे मदद मिलती है? इस पर बात की गई है कि उत्पादन एवं प्रक्रिया सबंधी इनोवेशन्स से रोजगारों पर क्या असर पड़ेगा? कि इनोवेशन्स के अपेक्षित परिणामों पर भी विचार किया गया है। इस भाग में यह भी समझा गया है कि इनोवेशन्स की शुम्पीटरवादी धारणा की ऐतिहासिक समझ से किसी देश या उसके एजेंडा में 'इनोवेटर्स' को चिन्हित करने में कैसे मदद मिल सकती है, और किस प्रकार वैज्ञानिक आविष्कार और तकनीक का वर्चस्व और उपनिवेशवाद के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इस भाग में यह दलील दी गई है कि भट्ठों में प्रचलित तकनीक और जातिगत ऊंच-नीच के संबंधों का अध्ययन करने के लिए क्यों उद्यम केंद्रित-दृष्टिकोण से राजनीतिक और नीतिगत दृष्टिकोण की तरफ ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। इसकी विश्लेषणात्मक दृष्टि डेनियल आर. हैड्रिक से ली गई है जो तकनीकी नवोन्मेष और साम्राज्यवाद के संबंधों पर सबसे विश्वसनीय ऐतिहासिक व्याख्याकार माने जाते हैं।

तीसरे भाग में प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में ईंटों के निर्माण व प्रयोग के तरीकों का अध्ययन किया गया है। साथ ही उपलब्ध साहित्य की पुनर्व्याख्या के आधार पर इस उद्योग के साथ जुड़े सामाजिक संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है और उस दौर की वास्तुशैलियों के साथ भी इस उद्योग के संबंधों को देखा गया है। यहां वास्तुशैली का आशय सिर्फ सांस्कृतिक प्रतिबिंब से नहीं है, बल्कि इन्हें समाज और राष्ट्रों के भीतर बनने वाले सत्ता संबंधों के प्रतिबिंब के रूप में भी देखने की कोशिश की गई है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की प्राचीन भारतीय सभ्यताओं में बढ़िया किस्म की ईंटों - आग में पकाई गई बढ़िया किस्म की ईंटों की मौजूदगी पर चर्चा की गई है और इस पर भी बात की गई है कि वैदिक काल में ईंटों की संस्कृति किस तरह खत्म हो गई थी। पुरातत्ववेत्ताओं ने उस जमाने में ईंटों के उत्पादन में दास श्रमिकों के इस्तेमाल के कोई साक्ष्य पेश नहीं किए हैं। मौर्य काल के जमाने से ही भारत के रेतीले मैदानों में आग में पकाई गई ईंटों और पत्थरों के इस्तेमाल के साक्ष्य बड़े पैमाने पर दिखाई देते हैं। पूर्वी भारत की तरफ चलें तो बंगाल और बांगलादेश में बौद्ध मंदिर परिसरों का निर्माण किया गया। इस अध्ययन में हम देख सकते हैं कि निर्माण सामग्री भी स्थानीय लोगों या राज्य की खास जरूरतों के हिसाब से बनाई जाती थी। यह एक दस्तकारी आधारित कुटीर उद्योग था। चाणक्य, मनु और नारद जैसे प्राचीन नीतिशास्त्रियों द्वारा दासों की श्रेणियों के बारे में जो जानकारियां दी

गई हैं, उनसे साबित होता है कि प्राचीन भारत में दास प्रथा और बंधुआ मजदूरी दोनों मौजूद थीं। इन साक्ष्यों में सामूहिक दासता के सबूत नहीं मिलते, मगर ऐसी असंख्य घटनाओं का उल्लेख मिलता है, जहां दासता और बंधुआ मजदूरी प्रचलित थी। युद्धबंदियों को भी दास कहा जाता था। आगे चल कर सल्तनत काल और मुगल काल में ईंटों को निर्माण सामग्री के रूप में फिर से इस्तेमाल किया जाने लगा। हालांकि ज्यादा इस्तेमाल अभी भी पत्थरों और लकड़ियों का ही हो रहा था। इस चर्चा में एक गौर करने वाली बात यह है कि प्राचीन और मध्यकालीन वास्तुशैलियों में बड़े पैमाने पर ईंटों के उत्पादन की जरूरत नहीं थी। ईंटों का उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जा रहा था और उन कुम्हारों की क्षमता व जरूरत के आधार पर ही यह उत्पादन हो रहा था, जो ईंट और बर्तन बनाने की तकनीक के मुख्य प्रतिनिधि थे। कुम्हार जाति हमारे देश के ग्राम समुदाय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, मगर इसे जातीय दर्जाबंदी में नीचे रखा जाता है क्योंकि उनका संबंध मिट्टी और पशुओं के गोबर से है। सल्तनत और मुगल काल में किए गए निर्माण कार्यों के लिए भी ईंटों के उत्पादन में तकनीकी सुधारों की बहुत आवश्यकता नहीं थी क्योंकि ज्यादातर निर्माण कार्य पत्थरों से किया जा रहा था, मगर भारत में अंग्रेजों का साम्राज्य स्थापित होने के बाद हालात बहुत तेजी से बदलते चले गए।

अध्ययन के चौथे भाग में भारत में अंग्रेजों के उपनिवेशवादी शासन का अध्ययन किया गया है। इसकी बागडोर 1613 से ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ में थी और 1857 के बाद अंग्रेजी सरकार के हाथ में चली गई थी। इस दौरान अंग्रेज सरकार की जरूरतों के हिसाब से भट्ठों में भी तकनीकी सुधारों की जरूरत अनिवार्य हो गई थी। भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद को 'बर्बर लोगों' को सभ्यता का पाठ पढ़ाने वाले मिशन के रूप में भी पेश किया जाता रहा है। डेनियल आर हैड्रिक का कहना है कि कुछ खास तकनीकी सुधारों से साम्राज्यवाद के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जरूरी साधन पैदा हुए। इस तर्क को ध्यान में रखते हुए अध्ययन के चौथे भाग में इस बात पर गौर किया गया है कि किस तरह अंग्रेजों ने विज्ञान और तकनीक का इस्तेमाल करते हुए बाढ़ों पर अंकुश लगाया, सिंचाई के लिए नहरें खोदीं, कोयला खदानें बनाईं, टेलीग्राफ नेटवर्क बनाया और सैन्य तंत्र को मजबूत किया। डाक बंगलों, छावनियों के निर्माण, नदियों और नहरों के तटबंध और रेलवे नेटवर्क का निर्माण - इन सबके लिए बड़े पैमाने पर ईंटों की जरूरत थी। चुनांचे ईंटों के निर्माण की तकनीक में तेजी से बदलाव लाना जरूरी था। बड़े पैमाने पर ईंटों के उत्पादन के लिए जरूरी था कि कच्चा माल बड़ी तादाद में जुटाया जाए। पूंजी और श्रम को एक जगह इकट्ठा किया जाए। इसका मतलब है कि उत्पादन का स्तर उस समय के साधारण उत्पादन से कई गुना ज्यादा बढ़ाना था। इसके लिए अंग्रेजों ने न तो देशी तकनीक को विकसित करने पर जोर दिया और न ही ईंट निर्माण की कोई नई तकनीक पेश की। उन्होंने मोटे तौर पर ईंटों के निर्माण की पद्धति और व्यवस्था में बदलाव ला दिया। उन्होंने छोटे-छोटे पैमाने पर यहां-वहां चलने वाले उत्पादन को संगठित किया और ईंट उत्पादन को एक औद्योगिक गतिविधि में बदल दिया। उन्होंने ईंट उत्पादन के अलग-अलग चरणों को भी समेकित किया ताकि एक साथ बड़े पैमाने पर ईंटें बनाई जा सकें। उन्होंने श्रम विभाजन की भी व्यवस्था विकसित की जिसमें हर मजदूर को एक निश्चित काम सौंपा गया। अभी तक कुम्हार ही ईंट उत्पादन की प्रक्रिया में आने वाले सारे कामों को खुद कर लिया करते थे। अब ऐसा नहीं रहा।

अंग्रेजों ने मजदूरों को जुटाने का भी एक ऐसा नया तरीका विकसित किया, जिस पर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया था। इसके लिए उन्होंने ठेकेदारों/मिस्त्री/सरदार/मुकदूमों के जरिए दूर-दूर से पेशगी के बदले मजदूरों को ईंट भट्ठों पर लाने का इंतजाम विकसित किया। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि मजदूरों को लाने वाले ये ठेकेदार/मकदूम कार्यस्थल पर भी मजदूरों को अपने अंकुश में रखें। इसके बाद ईंट निर्माण की अलग-अलग गतिविधियों को पूरा करने वाले मजदूरों को भी मकदूमों या सरकारों या मिस्त्रियों के अंकुश में रख दिया गया। ये ठेकेदार या मकदूम आदि ही मजदूरों की ओर से मालिकों से मजदूरी भी वसूल करते थे। अलग-अलग काम के लिए अलग-अलग जातियों के मजदूरों को इकट्ठा किया जाने लगा और उन्हें भट्ठों पर बंधुआ मजदूर के तौर पर काम में झोंक दिया गया। इसके अलावा, अंग्रेजों ने न केवल श्रम बाजार के मांग पक्ष, बल्कि आपूर्ति पक्ष पर भी ध्यान दिया और सुनिश्चित किया कि देश के ग्रामीण इलाकों से बड़ी संख्या में कुशल और अकुशल मजदूर उपलब्ध होते रहें।

पांचवें भाग में अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के दौरान ब्रिटेन में ईंट भट्ठा उद्योग का जायजा लिया गया है और बताया गया है कि वहां भी मजदूरों को भट्ठों पर लाने और उत्पादन की श्रेणीबद्ध व्यवस्था विकसित करने का खयाल यूरोप के अन्य देशों से लिया गया था जहां ईंटों का उत्पादन मोटे तौर पर क्लैम्प किल्न पद्धति से किया जाता था। इस पद्धति में मिट्टी की खुदाई से लेकर ईंटों की पथाई तक सारा काम मोल्डर यानी पथेरे और उनके परिवार के लोग करते थे और उन्हें 1000 कच्ची ईंटों के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी। भट्ठों में काम करने वाले मजदूरों को गिल्ड में संगठित किया जाता था और गिल्ड का काम कच्ची और पकी ईंटों की ढुलाई करना था। पकी हुई ईंटों को निर्माण स्थल तक ले जाने का काम गिल्ड का एक अलग हिस्सा करता था। यूरोप और बिटेन में ईंटों के भट्ठे छोटे-छोटे

होते थे। ये भट्ठे आम तौर पर वहीं चलाए जाते थे, जहां ईंटों की ज्यादा मांग होती थी, मगर बड़ी तादाद में उत्पादन के लिए कलैम्प या किल्न में सारे कामों को एक जगह पर भी संगठित किया जा सकता था। ईंटों का निर्माण ठेकेदारी व्यवस्था के हिसाब से किया जाता था। ज्यादातर मजदूर प्रवासी होते थे जो समूह में भट्ठे पर आते थे। समूह का नेता, जिसे गैंग लीडर कहा जाता था, वह न केवल इन मजदूरों को लेकर आता था, बल्कि कार्य स्थल पर भी उन्हें अंकुश में रखता था। वही उनकी मजदूरी का भुगतान करता था। ईंट पाथने वाले यानी पथेरे अपने परिवार के साथ मिलकर काम करते थे। पति-पत्नी और बच्चे - पूरे परिवार के लोग मिलकर ईंटें बनाते थे। काम की पाली लंबी होती थी; जो 12 घंटे से भी ज्यादा समय तक चलती थी। ईंट निर्माण की गतिविधि अलग-अलग हिस्सों में बंटी हुई थी और ये सारे काम मजदूरों के अलग-अलग समूहों को दिए जाते थे ताकि सारे काम कुशलतापूर्वक चलते रहें।

अंग्रेज ठेकेदार और इंजीनियर भारत में भी ईंटों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए ब्रिटेन में प्रचलित तकनीक और कार्यव्यवस्था लेकर आए। मगर, यहां उस पूरी व्यवस्था को जस का तस लागू करना बहुत सरल काम नहीं था। भारत के गांवों में आर्थिक, कृषि और औद्योगिक नीतियों की वजह से बड़े पैमाने पर गरीब लोग मौजूद थे, जिन्हें अंग्रेज भट्ठों में ला सकते थे। उन्हें तरह-तरह के लालच और फुसलावे के जरिए भट्ठों में काम करने के लिए इकट्ठा किया गया। भट्ठों में मजदूरों को जुटाने के लिए बहुत सोच-समझ कर तौर-तरीके अपनाए गए। समाज में प्रचलित सामाजिक एवं जातिगत पूर्वाग्रहों और विभाजनों का खुलकर इस्तेमाल किया गया। उनके साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई। उन्नीसवीं सदी के ब्रिटेन और यूरोप के अन्य देशों में गारा तैयार करने, ईंटों की पथाई और पकाई के मामले में बहुत तेजी से बदलाव आ रहे थे। वहां तकनीकी प्रगति की रफ्तार बहुत तेज थी, मगर 'सिविलाइजिंग मिशन' पर होने के बावजूद अंग्रेज अफसरों और तकनीकी विशेषज्ञों ने यहां उन नई तकनीकों का आयात नहीं किया क्योंकि यहां उन्हें बड़े पैमाने पर बेरोजगार मजदूर मिल रहे थे।

छठे भाग में इस बात पर रोशनी डाली गई है कि किस तरह साम्राज्यवादी शासन ईंट उद्योग में इस तरह के तौर-तरीके अपनाता रहा जिनसे मजदूरों की ताकत पर अंकुश लगाया जा सके और तेजी से ज्यादा से ज्यादा ईंटें तैयार की जा सके। इसी के परिणामस्वरूप कलकत्ता में 'बुल्स ट्रेंच किल्न' किस्म के भट्ठे का आविष्कार किया गया। उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि औपनिवेशिक सरकार अपनी विभिन्न निर्माण गतिविधियों में बुल्स ट्रेंच किल्न के इस्तेमाल को बढ़ावा दे रही थी। 'बुल्स ट्रेंच किल्न' अंग्रेज इंजीनियरों और ठेकेदारों के लिए बहुत माकूल थे। अभी तक इस्तेमाल किए जा रहे मौसमी भट्ठों के मुकाबले इन भट्ठों में ईंधन की खपत कम होती थी। परंपरागत हॉफमैन किल्न के मुकाबले इनमें खर्च कम आता था और ज्यादा संख्या में ईंटें पकाई जा सकती थी। मगर बुल ने जो पद्धति विकसित की, उसमें भी गारा तैयार करने और पथाई की तकनीक और प्रक्रिया में कोई बदलाव नहीं किया। यह प्रक्रिया उसी तरह श्रम सघन बनी रही, जैसी अभी तक चली आ रही थी। परिणामस्वरूप बुल्स ट्रेंच किल्न पद्धति में मजदूरों की आपूर्ति और आवाजाही के तरीके भी पहले जैसे बने रहे। नई व्यवस्था में मजदूरों को संगठित करने की संभावना और ज्यादा क्षीण कर दी गई क्योंकि भट्ठे के अलग-अलग कामों को एक-दूसरे से बिल्कुल अलग कर दिया गया था। बुल्स ट्रेंच किल्न पद्धति ने 'पुराने फायरिंग गैंग्स' यानी ईंटों को पकाने वाले समूहों को लोडर और अनलोडर यानी ढुलाई मजदूरों में तब्दील कर दिया। इनमें से कुछ लोगों को फायरमैन का दर्जा दे दिया गया, मगर उनकी संख्या बहुत ही कम होती थी। जो लोग मिट्टी का काम करते थे, उन्हें निचले दर्जे का माना जाता था जबकि जो लोग ज्यादा जोखिम वाला काम करते थे उन्हें ऊंची नजर से देखा जाता था। इसी आधार पर आज भी जो लोग आग के सीधे संपर्क में रहते हैं उन्हें सबसे ऊंचे दर्जे पर रखा जाता है। इस प्रकार ईंट भट्ठों में भी एक ब्राह्मणवादी ऊंच-नीच वाली व्यवस्था दाखिल होती चली गई। लिहाजा हम देखते हैं कि गारा बनाने और पथाई करने वाले मजदूरों को पेशगी देकर भट्ठे पर लाया जाता था और वे पूरी तरह ठेकेदार से बंधे रहते थे। इससे भी खतरनाक बात यह थी कि पुरुष, महिला और बच्चे - इन सभी मजदूरों की सेहत धुल, धुएं और गर्मी और तरह-तरह की गैसों की वजह से खतरे में रहती थी। इन सारी खामियों के बावजूद 'बुल्स ट्रेंच किल्न' कामयाब रहा क्योंकि हिंदुस्तानी मजदूरों की फिक्र करना उनकी प्राथमिकता नहीं थी और यहां बेरोजगार मजदूर बहुत बड़ी तादाद में उपलब्ध थे।

- जे. जॉन

23 दिसंबर, 2017

ईंट भट्ठों में जातिगत श्रम विभाजन

हालांकि उद्योग क्षेत्र ईंट भट्ठा क्षेत्र के उत्पादन को सार्वजनिक तौर पर मान्यता नहीं देता, मगर इस पर आम सहमति है कि भारत के भट्ठा उद्योग में काम का बंटवारा मोटे तौर पर जातियों के आधार पर ही किया जाता है। ईंटों के उत्पादन में कई तरह के काम होते हैं जो काम के स्वरूप और सम्मान की दृष्टि से जातिगत ऊंच-नीच से मेल खाते हैं। इन कामों का क्रम इस प्रकार होता है : गारा तैयार करना और ईंटों की पथाई (पथेरे); भट्ठों में ईंटों की भराई (भराई वाला); भट्ठे में ईंटों की चटाई लगाने वाला (बेलदार); भट्ठे से राख या राबिश निकालना (राबिश वाला); भट्ठे से पकी हुई ईंटें निकालना (निकासिये); और फायरमैन (झुकाई वाले या जलाई वाले)। इस श्रेणी में एक छोर पर पथेरे हैं जो ज्यादातर दलित होते हैं, जबकि दूसरे छोर पर फायरमैन हैं जो आम तौर पर किसी ऊंची जाति के होते हैं। जातिगत ऊंच-नीच की यह व्यवस्था ईंट भट्ठों में कामों की ऊंच-नीच की व्यवस्था से मेल खाती है। इन लोगों के अलावा भट्ठे पर मुंशी होता है जो मालिकों का नुमाइंदा होता है और वहां हमेशा ऊंची जाति का होता है। आम तौर पर पथेरा हमेशा पथेरा रहता है। उसे कभी फायरमैन का दर्जा या जिम्मेदारी नहीं मिल पाती। यह ऊंच-नीच हमारी जाति प्रथा को प्रतिबिंबित करती है। तथाकथित शुद्ध कार्य ऊंची जाति के लोगों को दिए जाते हैं और कथित गंदे काम निचली जाति के लोगों से करवाए जाते हैं। सीधे गारा या मिट्टी में काम करना भारत की जाति व्यवस्था में एक गंदा या निकृष्ट काम माना जाता है। लिहाजा ईंटों की पथाई का काम दलितों के हिस्से आता है।

एक उद्योग की तरह वर्गीकृत होने के बावजूद क्या हमारे ईंट भट्ठे जाति आधारित समाज के प्रतिबिंब हैं? जो लोग भट्ठों में इस तरह के श्रम विभाजन को नहीं मानते, वे यह तर्क दे सकते हैं कि जाति की समस्या सिर्फ ईंट भट्ठों तक सीमित नहीं है, बल्कि भारत के लगभग सभी उद्योगों और सेवा क्षेत्रों में दलित और निचली जातियों के लोग 'सफाई' जैसे निचले दर्जे के कामों में ही लगाए जाते हैं। इस तरह के तर्क के दो जवाब दिए जा सकते हैं। पहली बात यह है कि यह तर्क एक मौजूदा स्थिति को जायज ठहराने का, एक तरह का गोल-मटोल, तर्क है जिसमें किसी अन्य संदर्भ में जाति आधारित नौकरियों पर सवाल नहीं उठाया जा रहा है, बल्कि उसको स्वतः सामान्य मानकर एक औचित्य प्रदान किया जा रहा है। दूसरी बात यह है कि भट्ठों में दलितों और आदिवासियों द्वारा किया जाने वाला काम - गारा और कच्ची ईंटें तैयार करना - भट्ठा उद्योग की सबसे प्रमुख गतिविधियों में से एक है। इस प्रमुखता का हवाला देने वाले लोग यह कहना चाहते हैं कि भट्ठों में कामों का विभाजन कौशल या हुनर के आधार पर किया जाता है, न कि जाति के आधार पर। मगर यह तर्क भी सही नहीं है क्योंकि खास कौशल अलग-अलग जातिगत समूहों को सौंप दिए गए हैं। एक और चिंता इस बात को लेकर है कि ईंट भट्ठों में प्रचलित तकनीक में कोई खास बदलाव आते दिखाई नहीं दे रहे हैं। मालिकों, वैज्ञानिकों, उपभोक्ताओं या ट्रेड यूनियन संगठनों की तरफ से भट्ठों की तकनीकी बनावट में बदलाव की कोई कोशिशें नहीं की जा रही हैं। इन सबको देखकर ऐसा लगता है कि हमारे देश का भट्ठा उद्योग ईंट उत्पादन की मौजूदा पद्धति यानी जाति आधारित श्रम विभाजन से पूरी तरह संतुष्ट है। इसके बावजूद, उद्योग परिवर्तन का वाहक हो सकता है। वह भी सामाजिक नियमों, खासतौर पर जाति आधारित श्रम विभाजन की भारतीय व्यवस्था को बदल सकता है। दूसरी तरफ यह भी सच है कि उद्योग जाति आधारित श्रम विभाजन को अपनी उत्पादक पद्धति में समाहित करके उसके सामने घुटने भी टेक सकता है।

सवाल यह है कि क्या ईंट भट्ठों में तकनीकी सुधारों के अभाव और जातिगत श्रम विभाजन के बीच कोई संबंध है या नहीं? क्या भारत (और दक्षिण एशिया) के ईंट भट्ठों की सबसे बड़ी विशेषता यानी श्रमिक जाति आधारित श्रम विभाजन और बंधुआ मजदूरी भी ईंटों के उत्पादन की तकनीक को बदलने से रोक तो नहीं रही है? इसी से जुड़ा एक और प्रश्न यह है कि भारत के ईंट भट्ठों में ऐसी क्या चीज है जो तकनीकी सुधारों को रोक रही है और क्या जाति आधारित भर्ती की व्यवस्था भी ऐसी दूसरी तकनीकों को अपनाने में अवरोध खड़ा करती है जो दुनिया भर में प्रचलित हो चुकी है? हमारे देश में इस तरह के समस्याप्रद सवालों पर ज्यादा काम नहीं किया गया है। इसका एक कारण शायद यह है कि हमारे देश के भट्ठा उद्योग में जाति आधारित पेशों और बंधुआ मजदूरी को बिल्कुल नैसर्गिक और स्वाभाविक मान लिया गया है। वैसे भी भट्ठों को 'कारीगरी', 'अनौपचारिक', 'परंपरागत', 'असंगठित', आदि कहकर इन गंभीर सवालों को हाशिए पर धकेल दिया जाता है। इसी तर्क से जुड़ी एक मान्यता यह है कि 'यहां तो यह स्थिति सदियों से न सही, मगर दशकों से ऐसी बनी हुई है।' लिहाजा यह तो कुदरती बात है! बीबीसी के एक रिपोर्टर हम्फ्री हॉक्सले ने 2014 में हैदराबाद में भट्ठा मजदूरों के हालात का बयान करते हुए यह बात कही थी। यह सोच इस वैचारिक धारणा का परिणाम भी हो सकती है कि तकनीकी बदलाव से सामाजिक संबंधों में बदलाव नहीं आते। यह रिपोर्ट भारत के ईंट भट्ठों में तकनीकी सुधारों के अभाव और भट्ठों में जाति-आधारित श्रम विभाजन के संभावित संबंधों को समझने की कोशिश करता है।

भारत के ईंट भट्ठों के बारे में सामान्य जानकारियां

दुनिया भर में हर साल लगभग 1.5 अरब ईंटें बनाई जाती हैं। चीन के बाद भारत दुनिया का सबसे बड़ा ईंट उत्पादक देश है। हमारे यहां

हर साल लगभग 70-80 करोड़ ईंटें बनती हैं। चीन के ईंट उत्पादन उद्योग में आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। वहां धुएं और विभिन्न उत्सर्जनों पर अंकुश लगाने के लिए नई तकनीक अपनाई जा रही हैं। इसके विपरीत, भारत में भट्ठों की संख्या, उनके कुल उत्पादन और उनमें काम करने वाले मजदूरों की सही संख्या का सटीक अंदाजा लगाना तक मुश्किल है। भट्ठों से संबंधित इन सूचनाओं में असंगतियां बहुत ज्यादा हैं। ऐसी असंगतियां पुराने और मौजूदा दौर के सभी छोटे तथा बड़े अध्ययनों में दिखती हैं।

उदाहरण के लिए, 1981-82 में नैशनल लेबर इंस्टीट्यूट द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण में पाया गया था कि गाजियाबाद, फरीदाबाद और दिल्ली में लगभग 10,000 बड़े ईंट भट्ठे चल रहे हैं (जो प्रतिदिन औसतन 45,000 ईंटें तैयार करते हैं)। उसी साल ऑल इंडिया ब्रिक्स ऐण्ड टाइल्स मेन्युफेक्चरर्स फेडरेशन, नई दिल्ली जारी किए एक बयान के मुताबिक इस इलाके के भट्ठों की संख्या 22,000 थी (गाजियाबाद, फरीदाबाद, दिल्ली मिलाकर) और उनमें लगभग 30 लाख लोग काम करते थे (ज्योति गुप्ता, 2003)। उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार 26 जून, 2017 की तारीख में राज्य के 77 जिलों में केवल 18,395 भट्ठे चल रहे थे जो बोर्ड के 1 मई, 2014 के आदेश का पालन कर रहे थे।[1]

ईंटों की मांग निर्माण उद्योग में आने वाले उतार-चढ़ावों के साथ आमतौर पर बढ़ती-घटती रहती है। इसका कारण भी स्वाभाविक है। निर्माण गतिविधियों में ईंटों का सबसे ज्यादा इस्तेमाल होता है, इसलिए निर्माण गतिविधियों में आने वाला उतार-चढ़ाव ईंटों के उत्पादन और मांग को भी सीधे तौर पर प्रभावित करता है। पिछले एक दशक के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में तेज इजाफा हुआ है और उम्मीद की जा रही है कि आगामी दशक में भी इसकी विकास दर 8 प्रतिशत के आसपास रहेगी। विशेषज्ञों का मानना है कि नोटबंदी से लगे झटके के बावजूद भारतीय की अर्थव्यवस्था की विकास दर गति में रहेगी[2] और इस तरह भारत की अर्थव्यवस्था दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में शुमार होती रहेगी[3] (भारत सरकार, 2017)। इंडिया ब्रांड इक्विटी फाउंडेशन[4] का अनुमान है कि 2028 तक भारत के सकल घरेलू उत्पाद में भूमि-भवन खरीद बिक्री क्षेत्र का हिस्सा लगभग 13 प्रतिशत तक बढ़ जाएगा (आईबीईएफ, 2017)। आईबीईएफ की रिपोर्ट में बताया गया है कि 2022 तक भारत का भूमि-भवन खरीद-बिक्री क्षेत्र और निर्माण क्षेत्र (आवास, रीटेल, हॉस्पिटेलिटी और वाणिज्य) में 7.5 करोड़ नौकरियां पैदा होंगी और यह सबसे ज्यादा रोजगार देने वाला क्षेत्र होगा। इस दौरान यह क्षेत्र शहरों में 1.88 करोड़ और गांवों में 1.48 करोड़ मकानों की कमी को पूरा करेगा (2015 के आंकड़े) और अनुमान लगाया जाता है कि 12वीं योजना अवधि (2012-2017) के दौरान 4.88 करोड़ मकानों के लक्ष्य तक पहुंचेगी। भारत सरकार के इस आशावादी अनुमान को शोध संस्थानों और निजी क्षेत्र के अध्ययनों से भी बल मिला है। उनका भी मानना है कि सरकार की कुछ नीतियों से भूमि-भवन खरीद-बिक्री क्षेत्र के फैलाव को गति मिलेगी। सरकार ने टाऊनशिप एवं आबादी विकास परियोजनाओं में 100 प्रतिशत तक विदेशी निवेश को छूट दे दी है। इसके अलावा सरकार 100 स्मार्ट सिटीज़ भी बनाने जा रही है। सबके लिए आवास योजना के तहत 2022 तक छह करोड़ मकान बनाने का आश्वासन दिया जा रहा है। इनमें चार करोड़ मकान ग्रामीण इलाकों में और दो करोड़ मकान शहरी इलाकों में होंगे। मार्च 2016 में 'रीयल एस्टेट बिल' भी पारित किया गया जिसमें इस क्षेत्र को नियमों के दायरे में लाने और इसे बढ़ावा देने के लिए एक 'रीयल एस्टेट रेग्युलेटरी अथॉरिटी' के गठन का प्रावधान किया गया है (केपीएमजी 2015)। यह भी बताया गया है कि 2030 तक भारत चीन और कतर जैसे देशों को पीछे छोड़ कर दुनिया में सबसे तेजी से बढ़ता निर्माण बाजार बन जाएगा[5] (ग्लोबल ऐण्ड ऑक्सफर्ड इकॉनॉमिक्स 2015)। इन सब

1 Pollution Control Board, U.P. (2017). District-wise updated status of identified brick Kilns in the State of U.P. in Compliance of the Order dated 01.05.2014 of Hon'ble High Court in PIL-20773/2014 Sumit Sing Vs State of U.P. & Others. Retrieved 23 August 2017, from http://uppcb. com/status_brick_kiln.htm. The Court had asked PCB to conduct a survey of all brick kilns in UP and ensure its order on pollution.

2 In a speech on the night of November 8, Prime Minister Narendra Modi declared the decision on demonetisation. The press release issued by the Reserve Bank of India clarified, "Government of India vide their Notification no. 2652 dated November 8, 2016, have withdrawn the Legal Tender status of Rs.500 and Rs.1,000 denominations of banknotes of the Mahatma Gandhi Series issued by the Reserve Bank of India till November 8, 2016. Prime Minister said that it was necessitated to tackle counterfeiting Indian banknotes, to effectively nullify black money hoarded in cash and curb funding of terrorism with fake notes."

3 Government of India's Economic Survey 2016-17 states: "During the boom years between 2003 and 2011, India's real GDP growth averaged 8.2 per cent, and exports grew at an annual rate of between 20 and 25 per cent (in real dollar terms, for goods and services). So, assume conservatively that India aims to grow at 8 per cent for the next decade and that that requires growth in exports of goods and services of 15 per cent, respectively."

4 India Brand Equity Foundation (IBEF) is a trust established by the Department of Commerce, Ministry of Commerce and Industry, Government of India, to promote and create international awareness of the 'Made in India' label in markets overseas and to facilitate dissemination of knowledge of Indian products and services. https://www.ibef.org/about-us.aspx

5 Global Construction 2030 by Global Construction Perspectives and Oxford Economics says that "India will add US$1 trillion to our global growth story for construction to 2030, and with a rate of growth almost double that of China over the period to 2020." See https://policy.ciob. org/wp-content/uploads/2016/06/GlobalConstruction2030_ExecutiveSummary_CIOB.pdf

चीजों को देखते हुए उम्मीद की जा रही है कि निर्माण सामग्री और ईंटों की मांग यहां लगातार बढ़ती जाएगी। हमारे देश में दीवारें बनाने के लिए सबसे ज्यादा ईंटों का ही इस्तेमाल किया जाता है। अर्थशास्त्री समीर मैथल का अनुमान है कि "यदि निर्माण गतिविधियों में सालाना 6.6 प्रतिशत का इजाफा हो तो 2030 तक दीवार बनाने की सामग्री की वार्षिक मांग लगभग 500 अरब इकाइयों तक पहुंच जाएगी" (समीर मैथल, 2013)।

ईंटों की मांग में इजाफे से भट्ठों की संख्या में भी इजाफा होगा और नतीजतन इस उद्योग में लगे मजदूरों की संख्या भी बढ़ेगी। मगर, भारत में भट्ठों की कुल संख्या या उनमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या के बारे में अभी भी कोई स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है।

ईंट निर्माण की तकनीक

मकानों और दूसरी इमारतों के निर्माण में इस्तेमाल होने वाली ईंट मनुष्य का आविष्कार है। ईंटों के रूप-रंग में एक खास तरह का लचीलापन होता है जिसकी वजह से उनका अलग-अलग चीजों के लिए अलग-अलग ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है। इसी तरह, ईंट निर्माण की तकनीक में भी गारा या शेल या क्ले शेल, आदि के मिश्रण का इस्तेमाल किया जाता है। इसके बाद कच्ची ईंटों को भट्ठे में आग से पकाया जाता है जिससे उनमें ताकत और मजबूती आ जाती है। ये आविष्कार नए नहीं हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में आयताकार ईंटों से मकान बनाने के सबसे पुराने साक्ष्य 7,000 ईसा पूर्व से मिलते हैं। आज भी हमारे यहां निर्माण के लिए ईंटों का ही सबसे बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है जिसके प्रसंस्करण या उत्पादन पद्धति में लंबे समय से बहुत कम बदलाव आए हैं (टी. एन. गुप्ता, 1998)। तब फिर ईंटों के निर्माण के क्षेत्र में नए आविष्कार कहां हो रहे हैं?

ईंट निर्माण को मोटे तौर पर दो हिस्सों में बांटा जा सकता है। एक है - कच्ची ईंटें बनाने की प्रक्रिया और दूसरी है - ईंटों को आग में पकाने की प्रक्रिया। भारत और एक तरह से पूरे दक्षिण एशिया में ईंटों की पथाई यानी कच्ची ईंटों का निर्माण हाथ से ही किया जाता है।

पकाने से पहले की प्रक्रियाएं

मिट्टी की खुदाई : ईंट बनाने के लिए मिट्टी आमतौर पर खेतों या नदियों के खादर से निकाली जाती है। ये खुदाई मशीनों से या हाथ से चलने वाले औजारों से की जाती है।

गारा बनाना : इस मिट्टी में दूसरी चीजें और पानी मिलाकर 8-12 घंटे तक उसे फूलने के लिए छोड़ दिया जाता है। इसके बाद हाथों और पैरों से मिट्टी को गूंधा जाता है। कई जगह मशीन से मिट्टी की गुंधाई होती है। कुछ भट्ठों में कच्ची ईंटें बनाने के लिए मशीनों का भी इस्तेमाल किया जाता है।

पथाई : कच्ची ईंट बनाने के लिए मिट्टी को लकड़ी या धातु से बने ईंट के सांचों में ढाला जाता है। गारा भरने से पहले सांचे में रेत डाली जाती है ताकि गारा/ईंट उसकी दीवारों से न चिपक जाए।

सुखाना : कच्ची ईंटों को एक समतल खुले स्थान पर रखा जाता है। 24 घंटे के भीतर ये कच्ची ईंटें काफी सख्त हो जाती हैं और उन्हें खेत में ही एक के ऊपर एक चट्ठों में लगा दिया जाता है। उनके चट्ठे इस तरह बनाए जाते हैं कि हवा आसानी से उनके आर-पार जा सके और वे लगातार सूखती रहें। हर दो दिन बाद उनको पलट दिया जाता है जिससे ईंट हर तरफ से सूख जाएं। एक-दो हफ्ते बाद वे आग में जलाने लायक हो जाती हैं।

गारा पर आधारित इन प्रक्रियाओं के अलावा 'एक्सट्रूजन प्रोसेस/वायरकट' प्रक्रिया भी अपनायी जाती है। इस पद्धति में एक चिकनी डाई के जरिए ईंटें बनाई जाती हैं। इसके बाद उन पर सेंड ब्लास्टिंग और रंगों का स्प्रे करके तरह-तरह के रूप-रंग और सुंदरता पैदा की जाती है। इस पद्धति में एक कॉलम को स्टील की तारों से काट-काट कर ईंटें बनाई जाती हैं। इसलिए इन ईंटों को 'वायर कट' भी कहा जाता है।

प्रेसिंग यानी दबाने की प्रक्रिया में अर्द्धशुष्क मिट्टी को ईंटों के सांचे में दबाया जाता है जिससे ठोस आयताकार ईंट बनती है।

भारत में जलाई आधारित ईंट निर्माण

भारत में भट्ठों की किस्म के बारे में होने वाली चर्चा आम तौर पर इस पर निर्भर करती है कि भट्ठे में ईंटों की पकाई कैसे की जाती है। ईंटों की पकाई की तकनीक के हिसाब से भट्ठों के डिजाइन में भी फर्क होता है। भारत में ईंटों का निर्माण हाथ से चलने वाली प्रक्रिया है। भारत में इस तरह के भट्ठे मिलते हैं :

(1) क्लैम्प किल्न; (2) फिक्स्ड/मूविंग चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न (एफसीबीटीके); (3) नैचुरल ड्रॉट ज़िग-ज़ैग फायरिंग टेक्नॉलॉजी (ज़िग-ज़ैग एनडी); (4) हाई/इंड्यूस्ड ड्रॉट ज़िग-ज़ैग किल्न (ज़िग-ज़ैग एचडी); (5) वर्टिकल शॉट ब्रिक किल्न (वीएसबीके); (6) हॉफमैन्स

किल्न; (7) डाऊन ड्रॉट किल्न (डीडीके); और (8) टनल किल्न (ग्रीनटेक नॉलेज सॉल्यूशंस ऐण्ड स्विस एजेंसी फॉर डेवलेपमेंट ऐण्ड कोऑपरेशन एसडीसी 2014)।[6]

1. क्लैम्प किल्न

क्लैम्प किल्न सबसे बुनियादी किस्म का भट्ठा होता है क्योंकि उसमें ईंटों की पकाई के लिए कोई स्थायी निर्माण नहीं किया जाता है। इसमें हरी ईंटों के चट्ठे बनाए जाते हैं और उनके बीच ज्वलनशील सामग्री भर दी जाती है। ये कच्ची ईंटें भी आमतौर पर ईंधन की सतह पर जमा की जाती हैं। जहां जमीन पर ईंधन को नहीं फैलाया जा सकता (आम तौर पर लकड़ी के इस्तेमाल की स्थिति में), वहां ईंटों के चट्ठे के नीचे सुरंग जैसी जगह छोड़ दी जाती है ताकि वहां ईंधन डाला जा सके। क्लैम्प तकनीक के एक बेहतर संस्करण में चट्ठे की बाहरी सतह पर कच्ची मिट्ठी का लेप भी चढ़ा दिया जाता है ताकि गर्मी बाहर ना निकल पाए। स्कॉच भट्ठा इसका एक बेहतर संस्करण है जिसमें उसकी तली, आग के लिए बनाए गए छेदों और बाहरी दीवारों को ईंटों की मदद से स्थायी रूप से बना दिया जाता है। यहां एक महत्वपूर्ण बात यह है कि *अठारहवीं सदी के आखिर तक भारत में ईंटें लगभग खालिस तौर पर क्लैम्प तकनीक से ही बनाई जाती थी।*

2. फिक्स्ड चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न (एफसीबीटीके)

फिक्स्ड चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न (एफसीबीटीके) भारत और अन्य दक्षिण एशियाई देशों में ईंटों को पकाने की सबसे प्रचलित तकनीक है। एफसीबीटीके एक घेरेदार भट्ठा होता है जिसमें लगातार आग जलती रहती है और उसके साथ-साथ चिमनी को आगे बढ़ाया जाता रहता है। चिमनी के आगे बढ़ने के साथ हवा का प्रवाह भी बदल जाता है और आग भी आगे बढ़ जाती है। इस तरह एक ही भट्ठे के एक हिस्से में ईंटें गर्म हो रही होती हैं और दूसरे हिस्से में उनको पकाया जाता है और किसी अन्य हिस्से में ईंटें ठंडी हो रही होती हैं। यह बुल्स ट्रेंच किल्न का संशोधित संस्करण है। शुरुआत में इस पद्ध ति में धातु की गतिशील चिमनियां होती थीं जिनको ईंटों के ऊपर खड़ा कर दिया जाता था और जैसे-जैसे आगे बढ़ती थी, चिमनियों को भी आगे खिसकाया जाता था। इसमें सुधार करके ज्यादा कुशल और कम प्रदूषण फैलाने वाली फिक्स्ड चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न तकनीक विकसित की गई। इसके बाद, 1990 के दशक के दौरान देश भर में फिक्स्ड चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न तकनीक को बड़े पैमाने पर अपनाया जाने लगा क्योंकि सरकार ने पूरे भारत में गतिशील चिमनियों के इस्तेमाल पर पाबंदी लगा दी थी।

3. नैचुरल ड्रॉट फायर ज़िग-ज़ैग किल्न (ज़िग-ज़ैग एनडी)

यह एक सतत, क्रॉस-ड्रॉट, गतिशील चिमनी वाला भट्ठा होता है जिसमें हवा का बहाव चिमनी से मिलने वाले ड्रॉट या झोंके की वजह से टेढ़ा-मेढ़ा (ज़िग-ज़ैग) होता है। *इसमें एफसीबीटीके तकनीक के साथ बहुत सारी समानताएं होती हैं।* मगर मुख्य फर्क ज़िग-ज़ैग वायु प्रवाह के रूप में ही दिखाई देता है। ज़िग-ज़ैग पद्धति से पकाई का तरीका पहली बार बुहरेर भट्ठे में अपनाया गया था (जिसको 1868 में पेटेंट कराया गया)। बाद में इसी पद्धति का हाबला भट्ठों में भी इस्तेमाल किया गया। भारत में सेंट्रल बिल्डिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट (सीबीआरआई) ने 1970 के दशक की शुरुआत में इंड्यूस्ड ड्रॉट (पंखे की मदद से) के आधार पर पहली बार ज़िग-ज़ैग पकाई तकनीक का इस्तेमाल किया था।

4. हाई/इंड्यूस्ड ड्रॉट ज़िग-ज़ैग फायरिंग किल्न (ज़िग-ज़ैग एचडी)

यह एक सतत, क्रॉस-ड्रॉट, गतिशील चिमनी वाला भट्ठा होता है जिसमें हवा का बहाव बेतरतीब (ज़िग-ज़ैग) होता है। इसमें हवा के बहाव के लिए जरूरी ड्रॉट या झोंका पंखे से मिलता है।

5. वर्टिकल शॅफ ब्रिक किल्न (वीएसबीके)

यह एक सतत, अपड्रॉट गतिशील भट्ठा होता है जिसमें आग एक ही जगह रहती है, जबकि आग से पैदा होने वाली गर्मी ऊपर-नीचे जाती रहती है। वीएसबीके तकनीक 1950 के दशक में ग्रामीण चीन के परंपरागत अपड्राफ्ट भट्ठों से विकसित हुई है। 1990 के बाद विभिन्न तकनीकी हस्तांतरण परियोजनाओं के तहत यह तकनीक भारत सहित कई दूसरे विकासशील देशों में भी लागू की गई है।

6. हॉफमैन्स किल्न

हॉफमैन भट्ठा एक घेरेदार, गतिशील भट्ठा होता है जिसमें आग लगातार जलती रहती है और घेरेदार या आयताकार ढंग से लगाई गई ईंटों में आगे बढ़ती चली जाती है। इन ईंटों की ऊपरी सतह ढलवां होती है। आग चिमनी या पंखे की मदद से आगे बढ़ती है। हॉफमैन भट्ठे का विकास 1858 में जर्मनी में फ्रेड्रिक हॉफमैन ने किया था और इसका पेटेंट उन्हीं के नाम पर कराया गया था। एक जमाने में यूरोप में ईंटें बनाने के लिए इन्हीं भट्ठों का इस्तेमाल किया जाता था। यह

6 In the description below, the author is largely using the description provided by Greentech Knowledge Solutions in the 'Factsheets about Brick Kilns in South an South East Asia' 2014.

तकनीक पहली बार उन्नीसवीं सदी में जर्मन मिशनरियों की मदद से भारत के मालाबार तटीय इलाके (दक्षिण पश्चिमी तट) पर लागू की गई थी और उस इलाके में आज भी यह भट्ठे चलते हैं।

7. टनल किल्न (सुरंग भट्ठा)

टनल किल्न भी एक सतत, गतिशील भट्ठा होता है जिसमें लंबी सुरंगों के जरिए कच्ची ईंटों को ले जाया जाता है। कच्ची ईंटों की पकाई सुरंग के मध्य भाग में होती है। सुरंग भट्ठा ईंट निर्माण तकनीक का सबसे उन्नत संस्करण माना जाता है। सुरंग भट्ठा तकनीक का बड़ा फायदा यह है कि इस तरीके से कई तरह के उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं, आग पर ज्यादा बेहतर नियंत्रण रखा जा सकता है और ज्यादा बेहतर उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। सुरंग भट्ठा तकनीक जर्मनी में उन्नीसवीं सदी के मध्य में विकसित हुई, मगर ईंट बनाने के लिए इस तकनीक का इस्तेमाल बीसवीं सदी में शुरू हुआ। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद इस तकनीक का बड़े पैमाने पर प्रसार हुआ और यूरोपीय देशों में फैले हजारों छोटे-छोटे भट्ठों की जगह इस नई किस्म के बड़े-बड़े भट्ठों ने ले ली। भारत में सुरंग भट्ठों की संख्या बहुत ही कम है (5 के आसपास)।

8. डाऊन ड्रॉट किल्न

डाऊन ड्रॉट किल्न एक मध्यम किस्म का भट्ठा होता है जिसमें ईंटों को जत्थों में पकाया जाता है। इस तरह के भट्ठे में जलते ईंधन से निकलने वाली गर्म गैस को पहले भट्ठे की छत की तरफ भेजा जाता है और फिर यह चिमनी की तरफ हवा के बहाव की वजह से कच्ची ईंटों के बीच से होते हुए नीचे की तरफ जाती है। अठारहवीं सदी के आखिर तक ईंटों का निर्माण क्लैम्प किल्न के बेतरतीब ढंग से लगाए गए चट्ठों में ही किया जाता था, मगर उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में कई तरह के सुधार आजमाए गए ताकि ईंटों की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके और ईंधन की बचत भी की जा सके। इसी प्रक्रिया में पहले अप-ड्रॉट और फिर डाऊन ड्रॉट भट्ठे तैयार हुए। इस तरह के भट्ठे का एक फायदा यह होता है कि इसमें ईंधन और उसकी राख भट्ठे के मुख्य भाग से बाहर रहती है और लिहाजा ईंटों पर किसी तरह की गंदगी या राख नहीं चिपकती।

ईंटों के निर्माण की प्रक्रियाएं उत्तरी भारत के पहाड़ी इलाकों, गंगा के मैदानी इलाकों और पठारी क्षेत्र में अलग-अलग होती है। फिर भी, एफसीबीटीके तकनीक को अपनाने का रुझान सभी जगह काफी

टेबल 1 : भारत में भट्ठों की किस्म और दायरा

भारत में भट्ठों की किस्म और दायरा					
क्र. सं.	जलाई तकनीक (फायरिंग टेक्नोलॉजी) के आधार पर भट्ठों की किस्म	भारत में ऐसे भट्ठों की संख्या	भारत में कुल उत्पादन (अरब में ईंटें)	भारत में उत्पादन का प्रतिशत	वे राज्य जहां यह तकनीक इस्तेमाल की जा रही है
1.	सुरंग भट्ठे (टनल किल्न)	5	0.08	0.03	कर्नाटक, तमिलनाडु, हरियाणा
2.	डाउन-ड्रॉट किल्न	300	0.24	0.10	कर्नाटक
3.	नेचुरल ड्रॉट ज़िग-ज़ैग किल्न	50	0.25	0.10	उत्तर प्रदेश, बिहार
4.	वर्टिकल शाफ्ट ब्रिक किल्न (वीएसबीके)	110	0.3	0.12	ओडिशा, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश
5.	हॉफमैन किल्न	500	2	0.81	केरल, तमिलनाडु
6.	हाई/इंड्यूस्ड ड्रॉट ज़िग-ज़ैग	2000	10	4.03	पश्चिम बंगाल
7.	क्लैम्प किल्न	1,00,000	50	20.17	गुजरात, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, केरल
8.	फिक्स्ड चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न (एफसीबीटीके)	35,000	185	74.64	पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश
	कुल	1,37,965	247.87	100.00	

स्रोत : 'ग्रीनटेक नॉलेज सॉल्यूशंस ऐण्ड स्विस एजेंसी फॉर डेवलपमेंट ऐण्ड कोऑपरेशन एसडीसी (2014) *फैक्ट्स शीट्स अबाउट ब्रिक क्लिंस इन साउथ ऐण्ड साउथ ईस्ट एशिया,* नई दिल्ली : ग्रीनटेक नॉलेज सोल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड' पर आधारित आंकड़े।

तेज दिखाई दे रहा है। यह बुल्स ट्रेंच किल्न का ही एक बदला हुआ रूप है। पंजाब से पश्चिम बंगाल तक ही नहीं, बल्कि पाकिस्तान और बांगलादेश में भी इसका चलन काफी तेज हुआ है। भारत में सालाना बनने वाली 247.87 अरब ईंटों में से लगभग 75 प्रतिशत ईंटें पंजाब से लेकर पश्चिम बंगाल तक के इसी गंगाई मैदानों के इलाकों में बनाई जाती हैं और यहां मुख्य रूप से एफसीबीटीके फायरिंग तकनीक का ही इस्तेमाल किया जाता है (समीर मैथल, 2013, डेवलपमेंट ऑल्टर्नेटिव्ज़, 2012)।[7]

शोध अध्ययन के नतीजे

सबसे पहले हमने इस मान्यता को परखने का प्रयास किया कि जिन भट्ठों में बहुत पुराने तरीके इस्तेमाल किए जा रहे हैं और जो भट्ठे पूरी तरह स्वचालित या बेहद तकनीकी ढंग से चलाए जा रहे हैं, उनमें जातिगत समीकरणों में कोई बदलाव आया है या नहीं। इसके लिए राजस्थान, उत्तर प्रदेश और हरियाणा में हमने 20 केन्द्रों पर अध्ययन किए। तकनीकी विविधता के आधार पर हमने भट्ठों की इन किस्मों का चुनाव किया : (1) क्लैम्प किल्न; फिक्स्ड/मूविंग चिमनी बुल्स ट्रेंच किल्न; (3) डाऊन ड्रॉट/क्लैम्प किल्न; और (4) सुरंग भट्ठा।

क्लैम्प किल्न सबसे परंपरागत किस्म के भट्ठे होते हैं। हमने राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के जिन 11 कलैम्प भट्ठों का दौरा किया, उनमें से 9 भट्ठों के मालिक मध्य प्रदेश के कुम्हार समुदाय के लोग थे जो रतलाम और मंदसौर जिलों से आकर यहां बसे हैं। इन भट्ठों को चलाने के लिए 6 से 20 लोगों की जरूरत पड़ती है। क्लैम्प किल्न में ईंट बनाना कुम्हारों का परंपरागत पेशा रहा है। हमने जिन भट्ठों का अध्ययन किया, वहां मालिक तथा उसके परिवार के अन्य सदस्य भी भट्ठे पर काम करते थे। वे भट्ठे की जगह तैयार करते थे, सूखी हुई ईंटें लाकर जमा करते थे और लकड़ी और कोयले का ढेर जमा करते थे। इन कामगारों के बीच कामों का बंटवारा तो होता था, मगर यह बंटवारा शुद्ध या अशुद्ध कामों के आधार पर नहीं था। पथेरों को प्रति 1ए000 ईंटों पर 400 रुपये मिलते थे, जबकि लोडरों को प्रति 1ए000 ईंटों पर 200.250 रुपये मिलते थे। जब भी क्लैम्प भट्ठे में पथेरों की कमी पड़ती, तो लोडर पथेरी भी करने लगते थे। स्थानीय समुदाय के लोगों को भी इसी आधार पर काम दिए जाते थे। अलग-अलग क्लैम्प भट्ठों में एक जलाई से 30,000 से 200,000 तक ईंटें बनाई जा रही थीं। राजस्थान के क्लैम्प भट्ठे भीलवाड़ा के स्थानीय बाजार के लिए माल तैयार करते हैं। क्लैम्प भट्ठों में बनी ईंटों की कीमत 3,200 से 3,500 प्रति हजार होती है।

राजस्थान में तीन बुल्स ट्रेंच भट्ठे गतिशील लोहे की चिमनियों वाले थे। बाकी छह भट्ठे (तीन उत्तर प्रदेश में और तीन राजस्थान में) फिक्स्ड यानी स्थिर चिमनी के साथ चलाए जा रहे थे। उत्पादन के स्तर, निर्माण प्रक्रिया के दौरान किए जाने वाले कामों की किस्म और भट्ठों के भीतर मजदूरों की तैनाती के मामले में दोनों तरह के भट्ठों में कोई फर्क दिखाई नहीं दिया। मगर गतिशील चिमनी वाले भट्ठों में चिमनी हर साल बदली जाती थी और इस पर हर बार लगभग 50,000 रुपये की लागत आती थी। स्थिर चिमनी लगाने का खर्च 15 से 20 लाख रूपये बैठता था और यह खर्च एक बार किया जाता था। इन भट्ठों में एक मौसम में 12 लाख से 100 लाख तक ईंटें बनाई जाती हैं। एक भट्ठे पर मजदूरों की संख्या 50-60 से 100-150 तक रहती है। इन भट्ठों में आने वाले मजदूर पूरे परिवार के साथ आते हैं और पूरा परिवार मिल कर काम करते है। उनकी तनख्वाह का हिसाब पूरे परिवार द्वारा किए गए काम की मात्र के आधार पर किया जाता है। बालाजी ब्रिक्स, लिरडिया, मंडल ब्लॉक, भीलवाड़ा, राजस्थान में गतिशील चिमनी का इस्तेमाल किया जा रहा है और इस भट्ठे पर लगभग 40-50 मजदूर काम करते हैं। इनमें पथेरे और जलैये उत्तर प्रदेश के बांडला और चित्रकूट से लाए गए थे। पथेरे चमार जाति के थे और जलैये यादव जाति के थे। भरैये, निकासिये और बेलदार मसूदा से आए राऊत (ओबीसी) जाति के लोग थे। अलग-अलग किस्म के कामों के लिए मजदूरों को अलग-अलग ठेकेदार भट्ठे पर लेकर आते हैं। गीता ब्रिक्स, भीलवाड़ा, राजस्थान गतिशील चिमनी वाला भट्ठा है। इस भट्ठे पर लगभग 70 मजदूरों की जरूरत होती है। यहां भी अलग-अलग कामों के लिए आने वाले मजदूरों को अलग-अलग ठेकेदार लेकर आते हैं। यहां के पथेरे बिहार से थे। वे मांझी और लहिया समुदायों के लोग थे। जलैये उत्तर प्रदेश के यादव थे। बाकी मजदूर राजस्थान के मसूदा से थे। ये रावत जाति

7 The brick production in the northern mountainous region is very low and is limited to valleys – e.g., Srinagar, Jammu and Dehradun. The Gangetic plains of north India account for about 65 per cent of total brick production. Punjab, Haryana, Uttar Pradesh, Bihar and West Bengal are the major brick-producing states in this region. Brick kilns, generally of medium and large production capacities (2–10 million bricks per year), are located in clusters around major towns and cities. Peninsular and coastal India account for the remaining 35 per cent of brick production. In this region, bricks are produced in numerous small units (production capacities generally range from 0.1 to 3 million bricks per year). Gujarat, Orissa, Madhya Pradesh, Maharashtra, Karnataka and Tamil Nadu are important brick-producing states in the peninsular plateau and coastal India. {Development Alternatives, 2012} {Sameer Maithel, 2013}

के मजदूर थे। विनायक ब्रिक्स, भीलवाड़ा, राजस्थान में भी गतिशील चिमनी का इस्तेमाल किया जा रहा है। यहां 60.80 मजदूरों की जरूरत होती है। यहां काम करने वाले पथेरे उत्तर प्रदेश और बिहार से आए थे। ये मांझी और चमार समुदायों के लोग हैं। जलाई मजदूर उत्तर प्रदेश के थे, जबकि बाकी मजदूर राजस्थान स्थित मसूदा के रावत थे। शक्ति ब्रिक्स, भीलवाड़ा, राजस्थान एफसीबीटीके तकनीक वाला भट्ठा है। यहां के पथेरे उत्तर प्रदेश और बिहार के चमार, मांझी और पासी समुदायों के मजदूर हैं। भराई और निकासी मजदूर रावत समुदाय से और जलाई मजदूर यादव समुदाय से थे। राजस्थान और उत्तर प्रदेश के दूसरे एफसीबीटीके भट्ठों में भी हालात कुछ इसी तरह के पाए गए। क्लैम्प भट्ठों के मुकाबले बुल्स ट्रेंच किल्न ज्यादा बड़े पैमाने के भट्ठे होते हैं। इनमें मजदूरों की भर्ती ठेकेदारों के जरिए की जाती है। इस आशय के भी साक्ष्य सामने आए कि मजदूरों की भर्ती जाति के आधार पर की जाती है। मजदूरों की तैनाती के लिहाज से काफी क्षेत्रीय बदलाव भी दिखाई दिए, मगर दलित समुदाय के मजदूर पथेरी में ही काम कर रहे थे। उनके पास भट्ठों में ज्यादा सम्मानजनक कामों में जाने का अवसर नहीं था।

पंजाब के मोहाली का भारत ब्रिक्स भट्ठा एक अर्द्ध-मशीनी किस्म का भट्ठा है। यहां ईंटों के लिए गारा मशीनों से तैयार किया जाता है। यहां भी ईंटों की पथाई और संबंधित काम उत्तर प्रदेश और बिहार से आए दलित मजदूर ही करते थे। जलाई मजदूर उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले के थे। उत्तर प्रदेश के वाराणसी स्थित प्रयाग क्ले प्रोडक्ट्स नामक भट्ठा भी एक अर्द्धमशीनी भट्ठा है। यहां के मजदूर मुख्य रूप से मशीनों पर काम करते हैं। लोडिंग और अनलोडिंग करने वाले मजदूर मशीन से काम नहीं करते। इसके अलावा जलाई मजदूर भी मशीनों के बजाय हाथ से ही काम कर रहे हैं। भट्ठे में कोयला झोंकने से पहले उसकी सफाई महिलाएं करती हैं। इनमें झारखंड के आदिवासी और अन्य स्थानीय पिछड़ी जातियों की महिलाएं प्रमुख थीं। भट्ठे पर काम करने वाला एक मुंशी पास के ही गांव के यादव जाति का व्यक्ति था। जलाई मजदूर झारखंड से आए आदिवासी थे। यह बात दूसरे भट्ठों से बिल्कुल भिन्न दिखाई देती है क्योंकि अन्य भट्ठों में ज्यादातर जलाई मजदूर उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ इलाके के ही पाए गए थे।

पंजाब के मोहाली स्थित भारत ब्रिक्स नामक भट्ठा एक स्वचालित सुरंग भट्ठा है जहां ईंटों को शेड में जलाने की व्यवस्था है। इन भट्ठों के मजदूर मशीनों पर काम करते थे। हमने जिन तीन मजदूरों के इंटरव्यू लिए, वे सरोज (पासी) समुदाय के दलित मजदूर थे। वे उन मशीनों पर काम कर रहे थे जिनसे मिट्टी की अलग-अलग प्रकार की चीजें बनाई जाती थीं।

आरंभिक शोध अध्ययन से निकले तथ्यों का सारांश

शुरुआती अध्ययन से पता चला कि जब ईंट उत्पादन की तकनीक में सुधार आता है, तब मजदूरों के बीच जाति आधारित भेदभाव और बंटवारा भी कमजोर पड़ने लगता है। तकनीक में जैसे-जैसे सुधार आता है, दलितों और आदिवासियों को भी ऐसे काम मिलने की संभावना बढ़ जाती है जो निम्न तकनीक वाले भट्ठों में नहीं मिलती। इसके बावजूद, इन संभावनाओं की भी एक सीमा दिखाई देती है। कुम्हारों के स्वामित्व और संचालन वाले क्लैम्प भट्ठों में श्रम और जाति आधारित उंच-नीच वाला विभाजन नहीं था। श्रम का यह दर्जाबंद विभाजन बुल्स ट्रेंच किल्न भट्ठों के साथ शुरू होता है। दूसरी तरफ यह भी सच है कि तकनीक में सुधार से खाना जाति-आधारित पेशागत जकड़बंदी पूरी तरह खत्म नहीं होती।

समस्या पर एक नई नजर

शुरुआती अध्ययन के नतीजों से हमें समस्या को नए ढंग से देखने की जरूरत महसूस हुई। हमें इस बात को फिर से देखना पड़ा कि भारत के ईंट उत्पादन में सुधारों के अभाव तथा उत्पादन में बंधुआ मजदूरी और जाति आधारित श्रम विभाजन के बने रहने के बीच कोई संबंध है या नहीं। क्या बुल्स ट्रेंच किल्न को एक तकनीक सुधार का दर्जा दिया जा सकता है? यदि हां, तो ऐसा क्यों, कब और कैसे हुआ? यह सुधार कौन लाया? इस सुधार के कौन-कौन से तत्व थे? जाति आधारित श्रम विभाजन और बंधुआ मजदूरी जैसी प्रथाएं बुल्स ट्रेंच किल्न पद्धति की विशेषता कैसे बन गए? ऐतिहासिक रूप से भारत के ईंट भट्ठों के साथ जाति किस तरह जुड़ी हुई है? इसने समाज को किस तरह प्रभावित किया? हैड्रिक की व्याख्या की रोशनी में अगर बुल्स ट्रेंच किल्न साधन था तो उसके उद्देश्य क्या रहे होंगे?

इसके लिए सबसे पहले हम भट्ठों के बारे में उपलब्ध सूचनाओं की कमियों और उनके निहितार्थों को समझने की कोशिश करेंगे। इसके बाद हम सुधारों के सिद्धांत का विश्लेषण करके यह समझने का प्रयास करेंगे कि इससे ईंट उत्पादन के क्षेत्र में आए तकनीकी बदलावों और उनसे समाज पर पड़े प्रभावों को समझने में किस तरह मदद मिल सकती है। भारत में ईंटों का उत्पादन हजारों साल पहले सिंधु घाटी सभ्यता में शुरू हो गया था, इसलिए हम ऐतिहासिक रूप से भी भारत में ईंट उत्पादन की तकनीक और उसके सामाजिक आयामों को समझने की कोशिश करेंगे। हम यह भी देखेंगे कि भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के दौर में जब तकनीकी सुधार आ रहे थे, उस दौर में किस तरह ईंट उत्पादन एक औद्योगिक गतिविधि बन गया और उसके उत्पादन की संरचना और मजदूरों की आवाजाही से भारतीय समाज पर किस तरह के प्रभाव पड़े।

ईंट भट्ठों की स्थिति को परिभाषित करने में आने वाली समस्याएं

भारत में ईंट भट्ठों की स्थिति को लेकर काफी भ्रम की स्थिति रहती है। उन्हें 'आर्टिज़नल' (दस्तकारी), 'अनौपचारिक' (इन्फॉर्मल), 'परंपरागत' (ट्रेडिशनल), 'असंगठित' (अनॉर्गेनाइज़्ड), आदि अलग-अलग शब्दों के जरिए संबोधित किया जाता रहा है। भारत में ही नहीं, बल्कि समूचे दक्षिण एशिया में यह एक आम स्थिति है। अफगानिस्तान से लेकर बंग्लादेश तक ईंट भट्ठों के लिए इसी तरह के शब्दों का प्रयोग किया जाता है। भारतीय ईंट उद्योग की यह समझ अधिकारियों, बुद्धिजीवियों, शिल्पकारों, ईंट उत्पादकों और नागर समाज संगठनों में भी फैली हुई है। ईंट भट्ठा तकनीक के विशेषज्ञ समीर मैथल के मुताबिक, "भारतीय ईंट उद्योग मुख्य रूप से असंगठित और गैर-मशीनी उद्योग है[8] (समीर मैथल, 2013), (समीर मैथल, एवं अन्य, 2014)। यह मत *डेवलपमेंट ऑल्टर्नेटिव्ज़* द्वारा बिहार के 6 जिलों में किए गये अध्ययन[9] (*डेवलपमेंट ऑल्टर्नेटिव्ज़*, 2012) तथा नैशनल सेंटर फॉर साइंस ऐण्ड एन्वायर्नमेंट द्वारा किए गए नैशनल ब्रिक मिशन जैसे अन्य अध्ययनों में भी प्रतिबिंबित होता है (डी डी बसु एवं अन्य, 2016)। *इकोनॉमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली* में प्रकाशित एक लेख में जयॉति गुप्ता कहती हैं, "ईंट भट्ठे शहरों के किनारों पर *लघुस्तरीय उत्पादन इकाइयों* के रूप में काम करते हैं" (जयॉति गुप्ता)।

नेशनल इंडस्ट्रियल क्लासिफिकेशन (एनसीओ 2008) कोड्स में निर्माण उद्योग को एक औद्योगिक गतिविधि के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है और इसे 'सेक्शन एफ : कंस्ट्रक्शन' (कोड्स 410-429) के भीतर रखा गया है जिसमें 'निर्माण एवं सिविल इंजीनियरिंग कार्यों हेतु सामान्य एवं विशिष्ट निर्माण गतिविधियां' आती हैं।[11] इस श्रेणी में ईंट भट्ठों और ईंटें बनाने वाले उद्यमों को शामिल नहीं किया गया है। ईंट उत्पादन इकाइयों को 'डिवीजन 23 : मैन्युफैक्चर ऑफ अदर नॉन-मैटेलिक मिनरल प्रोडक्ट्स'[12] (डिवीजन 23 : अन्य गैर-धातु खनिज उत्पादों का निर्माण)' शीर्षक के अंतर्गत '2392: मिट्टी आधारित निर्माण पदार्थों का उत्पादन' के तहत समूहबद्ध किया गया है। यह सब 'सेक्शन सी : मैन्युफैक्चरिंग' के अंतर्गत आता है और जिसमें 'मिट्टी, कंकड़, पत्थर या गारा जैसे गैर-धातु पदार्थों से बने उत्पादों का निर्माण' को शामिल किया गया है। एन्युअल सर्वे ऑफ इंडस्ट्रीज (एएसआई), 2014-15 में मिट्टी से बनने वाली निर्माण सामग्री के बारे में जानकारी दी गयी है। यहां ईंटों तथा नॉन रिफ्लेक्टरी सिरेमिक सेनिटरी वेयर्स (सिंक, बाथ, वॉटर क्लोज़ेट पैन, फ्लशिंग सिस्टर्न आदि) के बारे में सूचनाएं दी गई हैं। ईंट भट्ठों के श्रेणी निर्धारण की इस सरकारी, अकादमिक और लोक स्वीकार्यता के कुछ महत्वपूर्ण अंतर्संबंधी निहितार्थ भी दिखाई देते हैं।

पहली बात यह है कि कानूनी नियमों के हिसाब से प्रशासकीय स्तर पर ईंट भट्ठों को एक अस्पष्ट श्रेणी में छोड़ दिया गया है, हालांकि कहने को ईंट भट्ठे विभिन्न कानूनों और विभिन्न विभागों द्वारा बनाए गए नियमों के दायरे में आते हैं। कायदे से ईंट भट्ठों को भी राजस्व विभाग से अनुमति लेनी चाहिए, प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से प्रमाण-पत्र लेना चाहिए और फैक्टरी कानून, 1948 या सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम विकास (एमएसएमईडी) कानून, 2006 के अंर्तगत उद्योग विभाग के समक्ष पंजीकरण कराना चाहिए। इसके अलावा उन्हें विभिन्न श्रम कानूनों[13] के तहत पंजीकरण कराना चाहिए और सभी श्रम कानूनों का पालन करना चाहिए। उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण

8 Greentech Knowledge Solutions is a Delhi-based clean energy research and advisory firm that offers services across renewable energy, energy efficiency, and green buildings domains.

9 "Brickmaking is a traditional, unorganised industry generally confined to rural and peri-urban areas," says the report. Development Alternatives is a social enterprise dedicated to sustainable development and a research and action organisation based in New Delhi. (http://www.devalt.org)

10 "Brick sector is a resource-intensive and highly polluting sector. It is largely unorganised and has never really come on the radar of regulatory agencies," says the report. The National Brick Mission (NBM) is a public interest research and advocacy organisation based in New Delhi and reportedly aims to transform the Indian brick sector by facilitating large-scale adoption of technologies for cleaner fired-brick production, finding alternatives to fired clay brick. (http://www.cseindia.org)

11 It includes new work, repair, additions and alterations, the erection of prefabricated buildings or structures on the site, and also construction of a temporary nature. It does not include manufacturing of bricks, though the production of bricks is for construction activities.

12 The industrial units include those engaged in 'manufacture of non-refractory ceramic pipes, conduits, guttering and pipe fittings, and manufacture of other clay building materials'.

13 The applicable labour laws, even if registered under MSMED Act, include Bonded Labour System (Abolition) Act, 1976, Child Labour (Prohibition & Regulation) Act, 1986, The Contract Labour (Regulation & Abolition) Act, 1970, The Employees Provident Funds and Misc. Provisions Act, 1952, Equal Remuneration Act, 1976, The Factories Act, 1948, The Industrial Disputes Act, The Industrial Employment (Standing Orders) Act,1946, The Inter-state Migrant Workmen (Regulation of Employment and Conditions of Service) Act, 1979, Maternity Benefit Act, 1961, The Minimum Wages Act, 1948, The Payment of Bonus Act, 1965, The Payment of Gratuity Act, 1972, The Payment of Wages Act, 1936, The Shops and Establishments Act, 1953, The Trade Union Act, 1926, Workmen's Compensation Act, 1923, etc. See http://dcmsme.gov.in/policies/lab_pol.htm

बोर्ड द्वारा दी गई जानकारियों से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश के 68 जिलों में पंजीकृत 18,395 ईंट भट्ठों में से 75% (13,797) के पास विभाग की मंजूरी नहीं थी (15 जून 2017)[14]। इसी तरह, बिहार राज्य खान विभाग से मिली जानकारियों से भी यह पता चलता है कि 17 जून 2016 को राज्य में चल रहे 6,801 भट्ठों में से 32% (2,173) ने विभाग को कोई भुगतान नहीं किया था। इसका मतलब है कि वे गैर-कानूनी भट्ठे थे। ऐक्शन एड द्वारा प्रकाशित की गई एक रिपोर्ट[15] (कोय थॉमसन, 2005) में बताया गया था कि अधिकृत रूप से हैदराबाद के लगभग 100 प्रतिशत भट्ठे गैर-कानूनी हैं क्योंकि उनके पास लाइसेंस या प्रवासी मजदूरों को काम पर रखने के लिए जरूरी पंजीकरण ही नहीं है। इस प्रकार, वे फैक्ट्री कानून, मजदूरी भुगतान कानून, खान एवं खनिज कानून, भविष्य निधि कानून, श्रमिक क्षतिपूर्ति कानून आदि विभिन्न कानूनी प्रावधानों से बच जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि भारत में चल रहे ईंट भट्ठों की संख्या को भी बहुत कम करके बताया जाता रहा है। उदाहरण के लिए, एन्युअल सर्वे ऑफ इंडस्ट्रीज (एएसआई) के सर्वेक्षण में फैक्ट्री कानून, 1948 की धारा 2एम(i) और धारा 2एम(ii) के तहत पंजीकृत सभी कारखानों (ऐसे कारखाने जिनमें 10 से अधिक मजदूर काम करते हैं) का सर्वेक्षण किया जाता है। इसके बावजूद, एनसीओ कोड 2,392 जिनमें ईंट भट्ठे भी शामिल हैं, के तहत एएसआई ने 'चालू फैक्ट्रियों' की संख्या केवल 8,325 बताई है और उनका कुल उत्पादन 9,66,582 ईकाई बताया है। यदि आल इंडिया ब्रिक मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन के उपाध्यक्ष ए के सिंह द्वारा दिये गये आकड़ों से तुलना करें तो यह संख्या हास्यास्पद रूप से कम दिखाई देती है। ए के सिंह का दावा है कि देश भर में लगभग 1,50,000 पंजीकृत ईंट भट्ठे चालू हैं (अनंत नाथ सिंह, 2014) और वे सालाना 195 अरब ईंटें पैदा करते हैं और उनमें 2,00,00,000 मजदूर काम करते हैं। ईको ब्रिक संस्था का भी अनुमान है कि पूरे भारत में 150,000 ईंट भट्ठे चल रहे हैं जो सालाना 170 अरब ईंटें तैयार करते हैं (ईको ब्रिक 2012)।

तीसरी बात यह है कि ईंट भट्ठे वायुमंडलीय, मृदा एवं जल प्रदूषण को बढ़ावा देते हैं। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) ने ईंट उत्पादन उद्योग को अत्यंत संसाधन एवं ऊर्जा सघन और प्रदूषक उद्योग बताया है क्योंकि इनमें अभी भी *बहुत पुरानी उत्पादन तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है।* वैश्विक ईंट उद्योग कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन का एक बहुत बड़ा स्रोत है। कार्बन वॉर रूम तथा जॉन हॉपकिन्स युनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित की गई एक शोध रिपोर्ट में बताया गया है कि ईंट भट्ठों में जिस कोयले का प्रयोग किया जाता है, उसकी मात्र के लिहाज से एशिया के पांच सबसे बड़े ईंट उत्पादक देशों (भारत, चीन, पाकिस्तान, बांग्लादेश और वियतनाम) का ईंट उद्योग दुनिया भर में कार्बन डाईऑक्साइड के वायुमंडलीय उत्सर्जन में 1.2 प्रतिशत योगदान देता है[16] (एलक्जेंडर लोपेज़, 2012)। भारत में ईंट उत्पादन की कुल लागत में लगभग 50% हिस्सा ईंधन का ही होता है। यही कारण है कि विद्युत संयंत्रों तथा लौह एवं स्टील उद्योगों के बाद ईंट उद्योग कोयले का तीसरा सबसे बड़ा उपभोक्ता है (डी डी बसु एवं अन्य, 2016)। ईंट भट्ठों में कोयले तथा अन्य बायोमास ईधनों के ज्वलन से पार्टिकुलेट मैटर (पीएम) का भी बड़े पैमाने पर उत्सर्जन होता है जिसमें ब्लैक कार्बन, सल्फर डाईऑक्साइड, ऑक्साइड्स ऑफ नाइट्रोजन, और कार्बन मोनोऑक्साइड भी शामिल हैं। इन प्रदूषक तत्वों के उत्सर्जन से भट्ठों पर काम करने वाले मजदूरों और आस-पास की हरियाली पर बहुत बुरा असर पड़ता है (समीर मैथल, 2012; समीर मैथल 2013)।

हैदराबाद के आसपास स्थित ईंट भट्ठों के बारे में ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (बीबीसी) द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट (हमफ्री हॅक्सले, 2004) में कहा गया था कि भारत के ईंट भट्ठा मजदूर 'गुलामों जैसा जीवन' जीते हैं। इन भट्ठों में उड़ीसा से बहुत बड़ी संख्या में मजदूर लाए जाते हैं। रिपोर्ट में बताया गया था कि ये मजदूर "रोजाना 12 से 18 घंटे काम करते हैं, गर्भवती महिलाएं, बच्चे, किशोरियां, ... सब।" "उन्हें भरपेट खाना नहीं मिलता, उन्हें साफ पानी नहीं मिलता, वे गुलामों जैसी जिंदगी जीते हैं।" इसमें यह भी बताया गया था कि *यह स्थिति सदियों से न सही, मगर दशकों से ऐसी ही चली आ रही है।* एक और रिपोर्ट (ओलिवर वेनराइट, 2014) में बताया गया है कि भारत के शहरों

14 See district-wise updated status of identified brick kilns in the state of U.P. in compliance of the order dated 01.05.2014 of Hon'ble High Court in PIL-20773/2014 Sumit Sing Vs State of U.P. & Others. Retrieved 23 August 2017, from http://uppcb.com/status_brick_klin.htm.

15 See Mines & Geology Department (2016). Status of payments/action taken against illegal brick manufacturers for the brick season 2014–15. Retrieved 23 August 2017, from http://mines.bih.nic.in.

16 The report says, "Brick kilns are significant emitters of black carbon, which is known to contribute to climate change and local health problems. Black carbon and suspended particulate matter (SPM) are the second-largest contributors to global warming after CO2. More than 2.4 million premature deaths can be attributed to black carbon every year."

की चमक-दमक गुलाम मजदूरों के श्रम की बुनियाद पर खड़ी है।[17] अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) ने जबरन मजदूरी की परिभाषा में बंधुआ मजदूरी को शामिल किया है।[18] आईएलओ द्व ारा प्रकाशित 2017 की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनिया में कुल 4.03 करोड़ लोग जबरिया मजदूरी के शिकार हैं जिनमें से आधे से ज्यादा लोग परंपरागत और आधुनिक मजदूरी के हालात में जी रहे हैं (8.7 एलाएंस, 2017)। इनमें से 1.83 करोड़ लोग भारत के हैं और इस तरह आधुनिक दासता के मामले में भारत दुनिया के देशों में सबसे ऊपर दिखाई देता है (वॉक फ्री फाउंडेशन, 2016)। भारत के ज्यादातर भागों में कृषि संबंध सामंती से पूंजीवादी होते जा रहे हैं और इसकी वजह से परंपरागत किस्म की कृषि आधारित बंधुआ मजदूरी का स्थान भी आधुनिक दासता ने ले लिया है। ईंट भट्ठों में बंधुआ मजदूरी भी इसी श्रेणी में आती है (सेंटर फॉर एजुकेशन ऐण्ड कम्युनिकेशन, 2004; नासिर अतीक और जे जॉन 2003, रवि एस श्रीवास्तव, 2015)।

गुजरात में 'प्रयास सेंटर फॉर लेबर रिसर्च ऐण्ड एक्शन' द्वारा 2012 में भट्ठों का एक विस्तृत अध्ययन किया गया था जिसमें ईंट भट्ठा मजदूरों को बंधुआ मजदूरी की श्रेणी में रखा गया था (सुनील पाड़ले एवं अदिति सिन्हा, 2015)। इसी तरह, पंजाब के भट्ठा मजदूरों के एक अध्ययन के अनुसार और संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन में दी गई दासता की परिभाषाओं, आईएलओ जबरिया श्रम कन्वेंशन तथा बंधुआ मजदूरी विरोधी भारतीय कानूनों की रोशनी में ईंट भट्ठों में काम की स्थिति और हालात इस तर्क को पुष्ट करते हैं कि यहां मजदूरों को समकालीन दौर की दासता के हालात में रखा जा रहा है (जे जॉन, 2014)। बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं के बीच इस बारे में एक व्यापक सहमति दिखाई देती है कि भट्ठा मजदूरों का जीवन बहुत हद तक बंधुआ मजदूरों से मेल खाता है। ईंट भट्ठों में मजदूरों को किस तरह की नाजुक स्थितियों में काम करना पड़ता है, इसके आधार पर उन्हें दासता की श्रेणी में भी रखा जा सकता है, मसलन (1) ईंट भट्ठा मजदूर देश के सबसे निर्धन इलाकों से आए प्रवासी मजदूर होते हैं (अंतःराज्यीय तथा अंतर्राज्यीय प्रवासी); (2) उनमें से ज्यादातर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति या सर्वाधिक पिछड़ी जातियों से होते हैं; (3) ठेकेदार पेशगी भुगतान देकर उन्हें लाते हैं और वे इस पेशगी को चुकता करने के लिए पूरे साल काम करते हैं; (4) वे बहुत लंबी पालियों में काम करते हैं - रोजाना 16 घंटे तक; (5) पूरा परिवार एक इकाई के रूप में काम करता है, मगर औरतों को स्वतंत्र मजदूर के रूप में नहीं गिना जाता और न ही उनका नाम हाजिरी के रजिस्टर में दर्ज होता है; (6) उन्हें कभी काम का पूरा मुआवजा नहीं मिलता और मालिकों द्वारा रखे जा रहे रिकार्ड और रजिस्टरों के आधार पर बहुत मामूली मजदूरी पर काम करने के लिए विवश किया जाता है; (7) उनके काम के हालात कठोर और खतरनाक होते हैं क्योंकि वे आग की तेज गर्मी और कठोर वायुमंडलीय स्थितियों में काम करते हैं; (8) उन्हें कठिन, असुरक्षित, अस्वास्थ्यकर और खराब हालात में काम करने के लिए बाध्य किया जाता है; (9) वे पेशगी के बदले काम करते हैं और ज्यादातर मजदूरों पर इतना कर्ज चढ़ा रहता है कि वे आम तौर पर उसे एक मौसम में नहीं चुका पाते; (10) मजदूरों के पास पेशगी को चुकता किए बिना नौकरी छोड़ने और कहीं नौकरी पकड़ने की आजादी नहीं होती (अजिता बनर्जी 2016, नलिनी कांत, 2006; वामसी वकुलाभर्नम, 2016, जयॉती गुप्ता, 2003, जे जॉन 2014, कॉय थॉमसन 2005)।

नए तकनीकी प्रयोग और समाज पर उनके असर

नए तकनीकी प्रयोग/आविष्कार पर तरह-तरह के शोध एवं विश्लेषणों की कोई कमी नहीं है। ओईसीडी द्वारा दी गई तकनीकी आविष्कारों की एक परिभाषा के अनुसार, "किसी नए अथवा उल्लेखनीय रूप से बेहतर उत्पाद (वस्तु या सेवा) या प्रक्रिया के कियान्वयन, किसी नई मार्केटिंग पद्धति, या व्यावसायिक प्रक्रियाओं में एक नई सांगठनिक पद्धति के क्रियान्वयन को तकनीकी आविष्कार (इनोवेशन) कहा जाता है" (ओइसीडी तथा यूरोस्टेट, 2005, नं. 87060)। इसी दस्तावेज में ऐसी गतिविधियों को *इनोवेशन/आविष्कारी गतिविधि* बताया गया है जो वैज्ञानिक, तकनीकी, सांगठनिक, वित्तीय और वाणि ज्यिक कदम होती हैं, जो वास्तव में या अपेक्षतया तकनीकी सुधारों के क्रियान्वयन को जन्म देती हैं। ये तकनीकी सुधार उत्पाद सुधार, प्रक्रिया सुधार, मार्केटिंग सुधार तथा सांगठनिक सुधार, आदि के रूप में हो सकते हैं। 'इनोवेशन' के अर्थ और प्रासंगिकता को किसी फर्म,

17 Quoting Andrew Brady of Union Solidarity International (USI), a UK-based NGO, the report says: "Entire families of men, women and children are working for a pittance, up to 16 hours a day, in terrible conditions. There are horrific abuses of minimum wage rates and health and safety regulations, and it's often bonded labour, so they can't escape."

18 According to the ILO Forced Labour Convention, 1930 (No. 29), forced or compulsory labour is "all work or service which is exacted from any person under the threat of a penalty and for which the person has not offered himself or herself voluntarily." ILO clarifies that the 'forced labour' definition encompasses "traditional practices of forced labour, such as vestiges of slavery or slave-like practices, and various forms of debt bondage, as well as new forms of forced labour that have emerged in recent decades, such as human trafficking," also called 'modern-slavery', to shed light on working and living conditions contrary to human dignity.

बाजार, और उपभोक्ताओं के साथ इस प्रकार जोड़कर दिखाया गया है कि यह न केवल एक रचनात्मक विषय बन जाती है बल्कि इसका विभिन्न उत्पादों, प्रक्रियाओं और सेवाओं में प्रयोग किया जा सकता है और कोई नई चीज पैदा की जा सकती है जिससे ग्राहक को लाभ होता है और संस्था के ज्ञान में इजाफा होता है' (डेविड ओ सुलिवान एवं लॉरेंस डूले, 2008, पृ. 5)।

तकनीकी या वैज्ञानिक आविष्कार और उसके उपयोग से आर्थिक और सामाजिक बदलावों में गति आती है। समाज के स्तर पर भी ऐसे आविष्कारों का प्रसार बढ़ता जाता है। मगर तकनीकी परिवर्तनों को न केवल युद्धकालीन या आणविक आविष्कारों के लिहाज से, बल्कि निर्माण क्षेत्र में भी एक दुधारी तलवार माना जाता है। ये परिवर्तन लाभ दे सकते हैं, तो साथ ही साथ अर्थव्यवस्था, समाज और पर्यावण के लिए गंभीर चुनौती भी पैदा करते हैं (इसाबेला मास्सा, 2015)।

ऊपर हमने जिन नए तकनीकी प्रयोग की चर्चा की, उनमें से उत्पादों की गुणवत्ता और किस्मों में सुधार से आम तौर पर रोजगारों में इजाफा होता है, मगर प्रक्रिया संबंधी नए प्रयोग - जिनसे लागतों यानी पूंजी और श्रम की जरूरत में कमी आती है - से रोजगारों में गिरावट आने लगती है (मिहायला डीआईएओएनयू, 2011)। तकनीकी सुधारों से बेरोजगारी में इजाफा होता है क्योंकि वह श्रम को अप्रासंगिक बना देती है (एंड्रयू रॉबर्ट्सन, 1981)[19]। यूएनआईडीओ का कहना है कि किसी नए प्रयोग के सामाजिक और नीतिगत निहितार्थों को समझने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसके आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय फायदों-नुकसानों का आकलन किया जाए। तकनीकी प्रयोग से समाज में बहुत सारे अवांछित नतीजे भी सामने आ सकते हैं। खास तौर पर तब जबकि तकनीक को ही अपने आप में एक उद्देश्य मानने वाले लोग उस समाज के सामाजिक व सांस्कृतिक कायदे-कानूनों को नजरअंदाज कर दें जहां उसे लागू किया जाना है (लिंडा एल. नाइमी एवं रिचर्ड मार्क फ्रेंच, 2009)। जो लोग इस पद्धति को अपनाते हैं, वे इस बात को नजरअंदाज कर देते हैं कि तकनीक को समाज के सामाजिक व सांस्कृतिक ताने-बाने के अनुरूप भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

नए प्रयोग व आविष्कार के लिए किन चीजों की जरूरत होती है, यह परिभाषित करने की विभिन्न कोशिशों के बजाय जोसेफ ए. शम्पीटर द्वारा अपनी ऐतिहासिक रचना *'द थ्योरी ऑफ इकोनॉमिक डेवलपमेंट'* (1934) में दी गई इसकी मूल अवधारणा आज भी प्रासंगिक है। शम्पीटर ने कहा था कि आर्थिक विकास नए प्रयोग/खोज से चालू होता है और इसे आर्थिक जीवन की परिधि में चीजों को भिन्न ढंग से पूरा करने के रूप में परिभाषित किया जाता है और यह उद्यमी कहलाने वाले कुछ खास लोगों की गतिविधियों च क्रियाकलापों का परिणाम होता है (पॉल एम स्वीज़ी, 1943)।[20] शम्पीटर के मुताबिक, 'इनोवेटर' को कोई 'आविष्कारक' होने की जरूरत नहीं है, और यह भी जरूरी नहीं है कि 'उद्यमी' किसी कंपनी का 'मालिक' भी हो। शम्पीटर की राय में 'रेडिकल' इनोवेशंस से बहुत भारी उथल-पुथल भरे बदलाव आते हैं और अभिवृद्धिकारी इनोवेशंस बदलाव की प्रक्रिया को लगातार आगे बढ़ाते जाते हैं। कैरोल स्लेडज़िक का कहना है कि 1930 के दशक के आखिरी सालों में शम्पीटर उद्यमशीलता के अपने शुरुआती सिद्धांत से दूर जाने लगे थे और उन्होंने एक बिलकुल अलग सिद्ध ांत पेश किया जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि उद्यमी कोई एक व्यक्ति हो, यह जरूरी नहीं है। शम्पीटर यहां तक भी कहते हैं कि कई बार पूरा देश या उसका एजेंडा भी एक उद्यमी की भूमिका अदा कर सकता है (कैरोल स्लेडज़िक, 2013)। इस तरह शम्पीटर ने अर्थव्यवस्था को उन सिर्फ गणितीय सिद्धांतों में सीमित कर देने का विरोध किया जो संस्थागत विश्लेषण और आनुभविक अध्ययनों व इतिहास को नजरअंदाज करते हैं।

इनोवेशन अर्थात नवोन्मेष को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखने पर चयन का आयाम सामने आता है। इसके अलावा हम वर्चस्व और उपनिवेशवाद के हित में किए गए वैज्ञानिक आविष्कारों और तकनीक के इस्तेमाल को भी देखते हैं और इस तरह यह चर्चा उद्यमकेंद्रित पद्धति से राजनीतिक और नीतिगत धरातल की

19 Anderson says that technology cannot be neutral. "Technology displaces labour, makes skill obsolete and contributes to unemployment. The 'human/technology relationship' has been examined in a book by M. Cooley, a British technologist who is also a trade-union official. In the quaintly titled Architect or Bee, ….Colley acknowledges that the successive waves of technological progress have in many cases freed human beings from routine, fatiguing, boring tasks, but too often and increasingly such progress has made some of them free to do nothing, their acquired skills and knowledge having been taken over by machines. Machines can work faster, more accurately in repetitive series of tasks, more consistently and smoothly than human operators and never get tired—though they may break down. The well-known result of this trend is that a highly skilled labour force (machine operators, setters, even toolmakers) is whittled down to the point where a handful of people watch control panels and another handful stand by for maintenance." pp. 436

20 Karol Śledzik (2013) in the article 'Schumpeter's view on innovation and entrepreneurship' quotes from Schumpeter, "The function of entrepreneurs is to reform or revolutionise the pattern of production by exploiting an invention or, more generally, an untried technological possibility for producing a new commodity or producing an old one in a new way, by opening up a new source of supply of materials or a new outlet for products, by reorganising an industry and so on."

बहस बन जाती है। यहां उद्यम और राज्य के हित किसी समस्या को संबोधित करने पर केंद्रित हो जाते हैं। ऐसी स्थितियों में 'समस्या' का समाधान करने के लिए किसी खास तकनीक को अपनाना इच्छा का सवाल बन जाता है और एक निश्चित, व्यापक तकनीक को अपनाने से उसी क्षेत्र में वैकल्पिक तकनीकों के चयन की संभावना सीमित हो जाती है (वर्नर एकरमान, 1986)। 'वाय इनोवेशन थ्योरीज़ मेक नो सेंस' शीर्षक अपने लेख में मेंफ्रेड मोल्डाश्ल का कहना है कि सामाजिक इनोवेशन का सिद्धांत आवश्यक नहीं है, मगर प्रस्थानबिंदु के रूप में या प्रायः एक लक्ष्य के रूप में हमें एक ऐसे सामाजिक सिद्धांत की दरकार होती है जो संतुलन की अनिवार्यता पर आधारित नहीं हो। तकनीकी इनोवेशन को समझने के लिए तकनीक के सिद्धांत की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि 'तकनीक खुद अपने आप को पैदा नहीं करती'; "इसके बजाय जरूरत होती है एक ऐसे *सामाजिक-आर्थिक* सिद्धांत की जो क्रियाशील रचनात्मकता, आर्थिक उत्प्रेरकों और तकनीकी इनोवेशन के लिए आवश्यक अन्य संस्थागत परिस्थितियों को एक-दूसरे के तालमेल में ला सके (जिसमें तकनीकी प्रणालियों की ऐतिहासिक फेहरिस्त भी शामिल है)" (मेंफ्रेड मोल्डाश्ल, 2010)। एक सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक संदर्भ से तकनीकी इनोवेशंस के प्रयोग की समझ हमारे लिए एक प्रासंगिक संदर्भ है जिस पर हमें चर्चा करनी है। इन्हीं की रोशनी में हम ईंटी भट्ठों में जाति और तकनीक के अंतर्संबंधों को समझने की कोशिश करेंगे।

तकनीक के इतिहासकार डेनियल आर हैड्रिक ने तकनीकी इनोवेशन और साम्राज्यवाद के संबंधों के एक विश्वसनीय ऐतिहासिक व्याख्या पेश की है। 'टेक्नोलॉजी : ए वर्ल्ड हिस्ट्री' (2009) किताब में उन्होंने ईंटों की तो चर्चा नहीं की है, मगर पाषाण युग से लेकर औद्योगिक क्रांति तक का और यहां तक कि हाल तक के इलक्ट्रॉनिक क्रांति के युग का भी ब्यौरा दिया है। इसके अलावा उन्होंने भारत सहित दुनिया के अलग-अलग भागों में तकनीक के विकास की भी तुलना की है। प्रस्तुत रिपोर्ट के लिए उनकी 'पॉवर ओवर पीपुल : टेक्नोलॉजी, एन्वायर्नमेंट्स ऐण्ड वेस्टर्न इम्पीरियलिज़्म, 1400 टू दि प्रेज़ेंट्' (2012) और 'दि टूल्स ऑफ एम्पॉयरः टेक्नोलॉजी ऐण्ड यूरोपियन इंपीरियलिज़्म इन द नाइन्टींथ सेंचुरी' (1981) नाम की किताबों के विवरण ज्यादा प्रासंगिक हैं। *'पॉवर ओवर पीपुल्स'* किताब में हैड्रिक ने तकनीकी इनोवेशन और यूरोपीय औपनिवेशिक विस्तार व फतह के संबंधों का जायजा लिया है।[21] उनके मुताबिक, नवसाम्राज्यवाद के युग में अफ्रीका और एशिया में यूरोपीय देषों के औपनिवेशिक प्रसार के लिए तकनीकी इनोवेशन की बहुत बड़ी भूमिका थी। अपनी पहली किताब में हेड्रिक ने तकनीक को परिभाषित करते हुए कहा है कि इसमें "वे सभी तरीके आते हैं जिनके माध्यम से मनुष्य पर्यावरण में उपलब्ध सामग्री व ऊर्जाओं का अपने हितों के लिए इस्तेमाल करते हैं जो वे केवल अपने शरीर के सहारे नहीं कर सकते।" साम्राज्यवाद को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा है कि "जब एक शक्तिशाली राज्य किसी कमजोर समाज पर अपनी इच्छा थोपने के लिए बल या बल की आशंका का प्रयोग करता है, खास तौर से जब कमजोर समाज किसी अन्य संस्कृति का हो, तो ऐसी स्थिति को हम साम्राज्यवाद कहते हैं।" उनका कहना है कि तकनीक के असमान वितरण से तकनीक से लैस ताकत कमजोर पर एकाधिकार स्थापित करने या तकनीक का इस्तेमाल उनके खिलाफ करने का मौका पाता है जिन्हें उन्होंने इस तकनीक से वंचित रखा है। तकनीक और साम्राज्यवाद के संबंधों को स्थापित करते हुए, जो भारत के लिए भी प्रासंगिक विषय है, वह *'दि टूल्स ऑफ एम्पायर'* में कहते हैं कि यूरोपीय उपनिवेशकारों ने उपनिवेश स्थापित करने के अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए वाष्प नौकाओं, वाष्प पोतों, राइफल, क्विनाइन/कुनैन और टेलीग्राफ जैसे नये तकनीकी साधनों का जमकर इस्तेमाल किया था। ये सारी चीजें औद्योगिक क्रांति की उत्पाद थीं। स्टीमर और क्विनाइन प्रोफाइलेक्सिस ऐसी 'तकनीक हैं जो प्रकृति द्वारा खड़ी की गई बाधाओं को भी समाप्त कर देती है', जबकि 'राइफल हथियारों और व्यूह की ताकत को तोड़ देती है।' हैड्रिक ने एक उदाहरण देकर बताया है कि किस प्रकार दमदम स्थित भारतीय हथियार कारखाने में तैनात कैप्टन बर्टी-क्ले ने 1897 में 'दमदम' कारतूस का पेटेंट कराया था। यह एक बहुत घातक आविष्कार था जो 'मांस को चीरते हुए पार निकल जाता था'। इस आविष्कार ने युद्ध की कला को और ज्यादा धारदार बना दिया था।[22] गौरतलब है कि कलकत्ता का नाम ईंट निर्माण के इतिहास में भी आता है।

21 Headrick (2012) distinguishes between initial European expansion and the imperialist expansion. "The first phase in the expansion of Europe, often called the Old Empires, began in the early sixteenth century with the Spanish conquest of Mexico and Peru and the Portuguese domination of the Indian Ocean; by the beginning of the nineteenth century, however, Western efforts in China, Central Asia, Africa, and the Americas were running into diminishing returns. Then in the mid-nineteenth century came a renewed spurt of empirebuilding—the New Imperialism—that lasted until the outbreak of World War II."

22 The book says that Europeans thought it too cruel to inflict upon one another, and used it only against Asians and Africans. Daniel R. Headrick. (1979) pp. 256

ईंट भट्ठों के लिए इन चर्चाओं का क्या महत्व है - खास तौर पर तब जबकि हम यह जानते हैं कि ईंट भट्ठों में कोई खास तकनीकी सुधार आया ही नहीं है और ईंटों व साम्राज्यवाद के बीच कोई स्पष्ट संबंध भी दिखाई नहीं देता है।

प्राचीन और मध्यकालीन भारत में ईंट भट्ठे और सामाजिक संबंध

ठोस साक्ष्यों के अभाव में निर्णायक रूप से यह कहना मुश्किल है कि जाति ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद से पहले के भारत में क्या भूमिका अदा की और ईंट निर्माण उद्योग में बंधुआ मजदूरी का प्रचलन था या नहीं। फिर भी, उपलब्ध स्रोतों की व्याख्याओं और प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत में मिले वास्तु अवशेषों की व्याख्या करने पर इस बारे में कुछ बात की जा सकती है। यहां हम वास्तुकला को सिर्फ एक सांस्कृतिक प्रतिबिंब के रूप में नहीं, बल्कि समाज के भीतर और राष्ट्रों के बीच सत्ता संबंधों के प्रतिबिंब के रूप में भी देख सकते हैं (मोनिका जुनेजा, 2015)[23]। इस तरह के सत्ता संबंध या संरक्षण के संबंध प्राधिकार के जटिल ताने-बाने में गुंथे होते थे। वे राजनीतिक सत्ता, अनुष्ठानिक हैसियत और शिष्टाचार के कायदों में गुंथे होते थे और उनसे भव्य संरचनाएं खड़ा करने के लिए श्रम सहित विभिन्न संसाधन जुटाने की क्षमता पर सीधा असर पड़ता था। इस प्रसंग में हमें मालिक/संरक्षक, कलाकार और शिल्पी के संबंधों तथा वास्तविक निर्माण कार्य करने वाले ईंट निर्माताओं, पत्थर काटने वालों, राजगीरों, शिल्पियों, खुश-नवीसियों आदि के संबंधों का ऐतिहासिक उललेख भी मिलता है (मोनिका जुनेजा 2015 पृष्ठ 49)।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो

भारत की प्राचीन सभ्यता (ईसा पूर्व 3000-1700) को बेबीलोनियाई और सुमेरिया सभ्यताओं के समकक्ष रखा जाता है और इस सभ्यता की ज्यादातर इमारतें ईंटों से ही बनी होती थीं। चूंकि उस जमाने में पत्थरों का बंदोबस्त कम हो पाता था और जलावन की लकड़ी बहुतायत में मिल जाती थी, इसलिए हड़प्पा के लोगों ने अपना समूचा शहर धूप में सुखाई और भट्ठियों में पकाई गई ईंटों से ही बनाया था। भट्ठियों में ईंटों को बहुत अच्छी तरह पकाया जाता था। यह बात इस आधार पर समझी जा सकती है कि हड़प्पा सभ्यता की ईंटें हजारों साल जमीन के भीतर दबे रहने के बावजूद यथावत पाई गई हैं। इसी तरह, मोहनजोदड़ो में भी एकसमान आकार वाली बेहतरीन ईंटें इस्तेमाल की गई थीं। वहां के मकान, सड़कें और गलियां इन्हीं ईंटों के बने थे (जॉन की, 2010, पृष्ठ 31-33)। पुरातत्ववेत्ताओं ने यह इंगित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया है कि उस जमाने में ईंटों के उत्पादन में दास श्रमिकों का भी इस्तेमाल किया जाता था या नहीं। 1700 ई.पू. के बाद ईंटों और हड़प्पा सभ्यता - दोनों का इतिहास एक तरह से टूट जाता है।[24]

लगभग 1500 ईसा पूर्व से 300 ईसा पूर्व के बीच वैदिक और पौराणिक युग में जब आर्य समुदाय पहले घुमंतुओं के रूप में और तत्पश्चात पशुपालकों के रूप में सिंधु घाटी और गंगा के मैदानों में बस रहे थे, उस समय भी आग में पकाई गई ईंटों के ज्यादा साक्ष्य नहीं मिलते यानी उस पुरानी तकनीक का क्या हुआ, यह पता नहीं चल पाता। 300 ईसा पूर्व से लेकर 700 ईस्वी तक भारतीय उपमहाद्वीप में निर्माण गतिविधियों में एक उछाह दिखाई देता है। यह वह दौर था जब मौर्य साम्राज्य का दबदबा बढ़ रहा था। ये निर्माण कार्य गुप्त वंश के काल में भी जारी रहे। उस समय की इमारतों में आग में पकाई गई ईंटों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल दिखाई देता है। तारानाथ के मुताबिक, महान मौर्य सम्राट अशोक ने भी एक मंदिर का निर्माण कराया था। इसके अलावा अशोक को नालंदा विहार का संस्थापक भी माना जाता है और यहां भी ईंटों का इस्तेमाल किया गया था। इन इमारतों की अधिरचना लकड़ी के शहतीरों पर खड़ी थी। मौर्य साम्राज्य के समय से ही भारत के रेतीले मैदानों में पकी हुई ईंटों और पत्थरों का निर्माण सामग्री के रूप में प्रयोग होता रहा है (टी एन गुप्ता 1998, पृष्ठ 4)। पूर्वी भारत की ओर बढ़ें तो पाल राजवंश (775 ईस्वी-850 ईस्वी) के दौरान बंगाल और वर्तमान बांग्लादेश में भी कई बौद्ध मंदिर बनाए गए थे[25] (जॉन की, 2010)। गुप्ता का मानना है कि निर्माण सामग्री का उत्पादन लोगों या राज्य की

23 Monica Juneja in her edited volume, Architecture in Medieval India: Forms, Contexts and Histories says, "… the act of production, of bringing a structure or a complex into being, inscribes in its forms, spaces and textures its relation to the fundamental structures that, at a given moment and place, fashion the distribution of power as well as the organisation of society and economy. Building activity is as much a socioadministrative act: it involves the control of an apparatus necessary to plan and design, to mobilise resources and labour, to organise the quarrying and transportation of building material." pp. 5

24 John Keay says, "in the Indian subcontinent the first great experiment in urban living, in political organisation and in commercial enterprise disappeared without trace beneath the sand and the silt. In the land of reincarnation there was to be no rebirth for the bustling and ingenious world of the Harappans. History would have to begin again with a very different group of people."

25 John Keay says, "For the Palas were Buddhists, indeed the last major Indian dynasty to espouse Buddhism. Their lavish endowments included the revival of Nalanda's university and a colossal building programme at Somapura, now Paharpur in Bangladesh, where sprawling ruins and foundations, all of brick, attest 'the largest Buddhist buildings south of the Himalayas.' pp. 180

जरूरतों के हिसाब से किया जाता था। यह हस्तकौशल आधारित कुटीर उद्योग था (टी एन गुप्ता 1998, पृष्ठ 5)।

प्राचीन भारत में दास प्रथा

प्राचीन भारत में दासता और बंधुआगिरी के बारे में हुए अध्ययनों से यह निकर्ष प्राप्त होता है कि प्राचीन भारत में दास प्रथा मौजूद थी। पाली भाषा के एक ग्रंथ में दिए गए एक संदर्भ के अनुसार दासों की तीन श्रेणियां हुआ करती थीं : (1) ऐसे दास जो स्वामी/मालिक के घर में पैदा हुए हैं (अंतोजात); (2) ऐसे दास जिनको खरीदा गया है (धनिखितो); (3) ऐसे दास जिन्हें युद्ध में बंदी बनाया गया है (कर्मारानतीयो)। इन तीनों श्रेणियों में युद्ध में बंदी बनाये जाने वाले सिपाही दास प्रथा का मुख्य स्रोत रहे होंगे। चाणक्य के *अर्थशास्त्र* में दासों और कर्मकारों (श्रमिकों) से संबंधित नियमों का एक पूरा अध्याय दिया गया है। वहां इन दोनों श्रेणियों के विषय में एक व्यवस्था पेश की गई है और दासों की हैसियत को परिभाषित किया गया है। *अर्थशास्त्र* में दासों की नौ अलग-अलग श्रेणियां बताई गई हैं : (1) ऐसे व्यक्ति जो युद्ध में बंदी बनाए गए हैं; (2) स्वामी के घर में पैदा हुए दास; (3) भोजन हेतु दास की श्रेणी में गिर चुके व्यक्ति; (4) खरीदे गए व्यक्ति; (5) उपहार के रूप में प्राप्त दास; (6) उत्तराधिकार में मिले दास; (7) न्यायिक आदेश के फलस्वरूप दास की हैसियत में पहुंचे लोग; (8) गिरवी रखे गए दास; तथा (9) ऐसे लोग जिन्होंने खुद को दास के रूप में बेच दिया है। कौटिल्य के बाद आए मनु ने दासों की सात श्रेणियां बताई हैं : (1) युद्ध बंदी; (2) भोजन के लिए दास बनाए गए व्यक्ति; (3) स्वामी के घर में जन्मे दास; (4) खरीदे गए दास; (5) पितृवंश से उत्तराधिकार में मिले दास; (6) माता-पिता द्वारा दास के रूप में दे दिए गए व्यक्ति; तथा (7) जुर्माना अदा न कर पाने या न्यायिक आदेश के फलस्वरूप दास बनाए गए व्यक्ति। मनु की सूची में कर्ज के कारण गुलाम बनाए गए लोगों का उल्लेख नहीं मिलता, मगर मनु और चाणक्य - दोनों में ही एक नई श्रेणी का उल्लेख किया गया है : ऐसे व्यक्ति जो भोजन के बदले दास की स्थिति में सीमित कर दिए जाते थे। दास और दस्यु, दोनों ही आर्यों के शत्रु होते थे और उनके साथ लगातार युद्ध करते रहते थे। दास और दस्यु एकसमान नहीं थे। ऐसा लगता है कि आर्यों ने दोनों के प्रति अलग-अलग रवैया अपनाया है। दस्युओं के प्रसंग में उनके विनाश (दस्यहर) का विवरण मिलता है, जबकि दास हत्या का संकेत नहीं मिलता। यह संभवतः इस बात को इंगित करता है कि आर्य भी दस्युओं के प्रति एक बर्बर विनाश की नीति अपनाते थे, जबकि दासों के मामले में थोड़े नरम जैसे थे (उमा चक्रवर्ती, 1985) पृष्ठ 38, 46 ।

नारद ने दासों की 15 श्रेणियां बताई हैं : (क) गृहजात, यानी ऐसा दास जो अपने स्वामी के घर में किसी दासी से पैदा हुआ है; (ख) क्रीत दास, यानी मूल्य अदा करके खरीदा गया दास; (ग) लुब्ध, यानी उपहार के रूप में प्राप्त दास; (घ) दायादोपागुत, यानी उत्तराधिकार में मिला दास (वह व्यक्ति जो संबंधित उत्तराधिकारी के पिता या किसी अन्य पूर्वज का दास था); (ड) अंकुलबृत्त, यानी ऐसा व्यक्ति जिसको दुर्भिक्ष के समय भोजन दिया गया था (ऐसा व्यक्ति जिसे दुर्भिक्ष के समय भूखों मरने से बचा लिया गया ताकि बाद में उसे दास बनाया जा सके); (फ) अहित, यानी ऐसा व्यक्ति जिसको उसके स्वामी ने गिरवी रखा हुआ है (ऐसा व्यक्ति जिसे मालिक ने पैसे के बदले गिरवी रखा था); (जी) ऋणदास, यानी ऐसा व्यक्ति जो अपने कर्जों की वजह से दासता की स्थिति में पहुंचा है; (एच) जूधप्राप्त यानी यानी युद्धबंदी; (आई) पुणाजित, यानी ऐसा व्यक्ति जो युद्ध में द्वंद्व के कारण दास बना है ('इस विवाद में हारने पर मैं दास बनना स्वीकार करूंगा' कहने के बाद हारने पर दास बनने वाला व्यक्ति); (जे) उपागत, यानी ऐसा व्यक्ति जिसने खुद को स्वेच्छा से अपने स्वामी को दास के रूप में समर्पित कर दिया हो; (के) प्रबुर्ज्याबसित, यानी संन्यास के कठोर मार्ग से विचरण करने वाला व्यक्ति; (एल) क्रीतकाल, यानी ऐसा व्यक्ति जो एक निश्चित अवधि के लिए दास हो (ऐसा व्यक्ति जो यह कहकर दास बना हो कि 'मैं इतने समय के लिए तुम्हारा दास रहूंगा'); (एम) भुक्तदास, ऐसा व्यक्ति जो भरण-पोषण के लिए दास बना हो (या भरण पोषण के एवज में स्थाई रूप से दास बना हो); (एन) बुर्रूबभृत्ता, यानी जो किसी स्त्री के पीछे आया हो, (घर में जन्मी दासी के मोह में पड़ कर उससे विवाह करके दास बना हो); (ओ) आत्मविक्रयी, यानी स्वयं को बेचने वाला (मंजरी डिंगवानी,1950)।

ऊपर वर्णित प्राचीन विधिवेत्ताओं द्वारा दी गई दासों की श्रेणियां प्राचीन भारत में दासता और बंधुआ मजदूरी के अस्तित्व को स्थापित करती हैं। फिर भी, उनसे कुल मिलाकर अलग-अलग स्थितियों का ही पता चलता है और युद्धबंदियों के सिवा दासता की समग्र व्यवस्था के बारे में पता नहीं चलता। नारद ने कर्मकारों (गैर-दास) और दासों के बीच बहुत स्पष्ट भेद किया है। उन्होंने कहा है कि कर्मकारों को केवल शुद्ध कार्य ही सौंपे जा सकते हैं, जबकि दासों को ऐसे काम करने होते हैं जिन्हें अपमानजनक माना जाता है और जिन्हें अधिकृत रूप से अशुद्ध कार्यों की श्रेणी में रखा जाता था। नतीजतन, दासों से उम्मीद की जाती थी कि वे घर के पलस्तर और लिपाई जैसे अशुद्ध कार्य करें, वे दालान की सफाई और स्वामी के नग्न शरीर पर तेल मालिश करें, उनको कपड़े पहनाएं, उसकी मेज पर रह गई जूठन को

हटाएं (डी आर बानाजी, 1933)। नारद ने दास को जाति के समकक्ष नहीं रखा है, मगर उन्होंने यह जरूर कहा है कि केवल ब्राम्हण ही हैं जो किसी भी स्थिति में दास नहीं बन सकते।[26] मनु द्वारा दिए गए जाति के विवरण[27] को पढ़ने पर जाति और दासता में एक संबंध देखा जा सकता है। मगर चूंकि इस दौर में हड़प्पा सभ्यता की ईंट निर्माण तकनीक प्रचलित नहीं थी और ईंटों का बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं किया जा रहा था, इसलिए यह मानने का कोई कारण नहीं है कि ईंट निर्माण के व्यवसाय में भी दास प्रथा प्रचलित रही होगी, हालांकि यह हो सकता है कि वह ईंट निर्माण के लिए एक निश्चित जाति के उदय का शुरुआती दौर रहा हो।

सल्तनत और मुगल काल

वर्ष 1192 में कुतुबुद्दीन ऐबक के सत्ता में काबिज होने के साथ शुरू हुए सल्तनत काल में बनाई गई इमारतों में पत्थर और लकड़ी के साथ-साथ ईंटों का भी इस्तेमाल पाया गया है, हालांकि इस दौर में भी ईंटों के बड़े पैमाने पर उत्पादन के सबूत कम ही मिलते हैं। "कुतुब मीनार के पास स्थित कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद इस दौर की सबसे शुरुआती इमारतों में से एक है। ....मुख्य सामग्री पत्थर, ईंट और लकड़ी हुआ करती थी" (टी एन गुप्ता, 1998, पृष्ठ 6-7)। मगर कला इतिहासकारों का कहना है कि उस समय ईंट पर्याप्त मात्र में उपलब्ध नहीं थीं और निर्माण कार्य मुख्य रूप से पत्थर से किया जाता था।[28] मगर 1526 से शुरू हुए मुगल काल में एक से एक महल, किले, प्रशासकीय इमारतें, मकबरे और मस्जिदें बनाई गईं जिनमें अकबर द्वारा निर्मित आगरा का किला, शाहजहां द्वारा लाल किला और ताजमहल और औरंगजेब द्वारा मोती मस्जिद का निर्माण भी शामिल है। इन इमारतों में भी मुख्य निर्माण सामग्री पत्थर ही है (लाल चूना पत्थर और संगमरमर, जिसकी खुदाई स्थानीय स्तर पर ही की जाती थी)। किन्हीं वजहों से सल्तनत और शाही मुगल काल में गंगा के मैदानों में मिट्टी से बनी ईंटों के इस्तेमाल में गिरावट दिखाई पड़ती है। बंगाल के मंदिरों और मस्जिदों का मामला अलग है जहां ईंटों का ही इस्तेमाल ज्यादा किया जा रहा था। हालांकि इस बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं मिल पाती कि उस समय ईंटों के बड़े पैमाने पर उत्पादन की तकनीक इस्तेमाल की जा रही थी या नहीं (जेम्स फर्ग्यूसन, 2015, परवीन हसन, 2015)[29]। इसके साथ-साथ यह भी देखा जा सकता है कि प्राचीन और मध्यकालीन वास्तु शैलियों में बड़े पैमाने पर ईंट उत्पादन के लिए किसी नए प्रयोग की दरकार नहीं थी। छोटे पैमाने पर ही ईंटों का थोड़ा-बहुत उत्पादन होता रहता था। यह काम कुम्हार जाति के लोग करते थे।

कुम्हार : मिट्टी के बर्तन और ईंट बनाने वाले कर्मकार

भारत में परंपरागत रूप से कुम्हार ही ईंट निर्माण और मिट्टी के बर्तन बनाने की तकनीक व कला के संरक्षक रहे हैं। कुम्हार ग्राम समुदाय की एक जाति है, मगर यह जाति क्रम में नीचे ही गिनी जाती है क्योंकि ये लोग अपने काम में मिट्टी और गोबर का इस्तेमाल करते हैं। वे मिट्टी की चीजें बनाते हैं और उन्हें पकाने के लिए ईंधन के रूप में गोबर का इस्तेमाल करते हैं। पूरे देश में उन्हें अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है और डब्ल्यू क्रूक (1896) में अपनी किताब *'दि ट्राइब्स ऐण्ड कास्ट्स ऑफ नॉथ वेस्टर्न प्रॉविंसेज़ ऐण्ड अवध'* (खंड 3) में

26 Banaji provides a quotation, "A Kshatriya or a Vaisya could likewise become a slave, in the inverse order of the classes, that is to masters of a class inferior to his own, provided he has forsaken his duty towards his own order." (quoted from Narada, Digest, B III, C.I.V. 56, Comments, pp. 254) (D.R. Banaji, 1933 pp. 208)

27 Uma Chakravarti explains, "The Shastra writers repeatedly reiterated the need for the varnashrama dharma, and condemned the practice of varnashamkara (mixing of the varnas), which implies that the prevailing social and economic stratification did not conform to the brahminical theory of ranking. ...Manu (in Dharmashastra) begins by asserting the orthodox view that the shudras were created by God to serve the brahmans, and he also enunciated the principle that slavery is the eternal destiny of the shudra. He believed that a shudra, whether or not he is bought, should be reduced to slavery because he had been created for the sole purpose of serving the brahman. He further states that a shudra could not be released from servitude because servitude is innate in him. He also postulated that members of the dvijas (twice-born castes) could not be reduced to slavery, and that anyone who compelled a dvija to work as a slave deserved to be fined heavily by the king." (Uma Chakravarti, 1985, pp. 51–52)

28 "The Turks who occupied Delhi came from areas in which both brick and stone were used in building, but architecture in brick, such as were in the oldest monuments of Bukhara, would have set the standard. Along with brick structures, the art of making tiles had been developed and was making continuous progress, both aesthetically and technically. On the other hand, sculpture and stone-masonry practised in the Greek colonies of Bactria and Gedrosia would not have died out. Thanks to Alauddin Jahansoz, we cannot now say whether Ghazni was mainly a city of brick or of stone or of wooden structures. But we may be certain that those who thought of building a mosque and a minar at Delhi were thinking in terms of architecture and not sculpture. Construction in wood was ruled out; bricks were not available; they could only build in stone." {Muhammad Mujeeb, 2015, #67109} pp. 292

29 Extracts from James Fergusson, History of Indian and Eastern Architecture, London, 1876, pp. 489–93, 557–68, reproduced as Chapter 1.2 in Monica Juneja (Ed.), Architecture in Medieval India: Forms, Contexts and Histories. He writes, "Bengal was early erected into a separate kingdom – in AD 1203 – more or less independent of the central power: and during its continuance – till AD 1573 – the capitals, Gaur and Maldah, were adorned with many splendid edifices. Generally these were in brick, and are now so overgrown by jungle as to be either ruined or barely invisible. They are singularly picturesque, however, and display all the features of a strongly-marked individuality of style." pp.123

कहा है कि "हिंदुओं की कम से कम 773 और मुसलमानों की कम से कम 52 उप-शाखाएं हैं।"[30] डब्ल्यू क्रूक ने बताया है कि पंजाब में कुम्हार ईंट पकाते हैं और 'वही हैं जो भट्ठों की कार्यप्रणाली को समझते हैं' (पृष्ठ 339)। पंजाब जनगणना रिपोर्ट, 1883 के आधार पर पंजाब सरकार ने 'ग्लॉसरी ऑफ दि ट्राइब्स ऐण्ड कास्ट्स ऑफ दि पंजाब ऐण्ड नार्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस' प्रकाशित की (1911) जिसमें कुम्हारों के कार्य, सांस्कृतिक, धार्मिक और मिथकीय व्याख्याओं का ब्योरा दिया गया है। इसमें बताया गया है कि कुम्हार हिंदू या सिख या मुसलमान हो सकते हैं। कुम्हार मिट्टी के बर्तन और मिट्टी की ईंटें बनाता है। कुम्हार गांव का एक श्रमिक होता है जिसे कटाई के समय परंपरा के अनुसार अनाज दिया जाता है और इसके बदले वह घर की जरूरत के लिए मिट्टी के बर्तन बनाकर देता है। वह गधे रखता है, अनाज की ढुलाई करता है, किसानों द्वारा बीज या भोजन के लिए खरीदे गए अनाज को दूसरे गांव से लेकर आता है और खाद, ईंधन व ईंटें ढोता है। रिपोर्ट में बताया गया है कि 'उसकी सामाजिक हैसियत भी बहुत नीचे होती है। लोहार से भी नीचे और चमार से कुछ खास ऊपर नहीं। इसका कारण यह है कि उसे चेचक की देवी मानी जाने वाली शीतला देवी के पवित्र पशु गधे से संबंद्ध होने के कारण दूषित माना जाता है। इसके अलावा, वह गोबर की खाद और कूड़ा भी ढोता है जिसके कारण भी उसे अशुद्ध माना जाता है।' ऐसा लगता है कि वह ईंटें भी बनाता है, मगर धूप में सुखाकर बनाई गई ईंटें आम तौर पर कुली या चमार द्वारा बनाई जाती हैं। कुम्हार द्वारा ईंटों और मिट्टी के बर्तनों का उत्पादन एक कुटीर उद्योग था। रिज़ले ने अपनी रिपोर्ट *'ट्राइब्स ऐण्ड कास्ट्स ऑफ बंगाल'* (1891) में ढाका के कुम्हारों का उल्लेख करते हुए कहा है, "कुम्हार के ठीये को जाकर देखना चाहिए। उसकी एक ही छत के नीचे भट्ठी, गोदाम और रिहाइश सब कुछ होता है। दहलीज के बाहर गारा तैयार की जाती है। उसकी भट्ठी को संस्कृत के *पावना* शब्द के आधार पर *पान* कहा जाता है - ऐसी चीज जो शुद्धिकरण करती है। उसकी झोपड़ी को *पान घर* कहा जाता है। भट्ठी में अलग-अलग ख़ाने बने होते हैं जिनमें सुखाये गए बर्तनों को करीने से लगा कर उन्हें मिट्टी से ढंक दिया जाता है। इन बर्तनों को तपाने के लिए लकड़ी का इस्तेमाल नहीं किया जाता, बल्कि घास, टहनियों या बांस की जड़ों का ही इस्तेमाल किया जाता है' (पृष्ठ 225)।

ग्राम समुदाय के आर्थिक संबंधों में ऐसा कोई कारण नहीं था कि कुम्हारों को ईंटों के उत्पादन या उनके जलाने की प्रक्रिया में किसी इनोवेशन की जरूरत होती। वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी ईंटों को जलाकर पकाने का ज्ञान आगे बढ़ाते जाते थे। सल्तनत और मुगल काल के दौरान बनाई गई विशाल इमारतों के लिए भी ईंट निर्माण में किसी इनोवेशन की ज्यादा जरूरत नहीं थी क्योंकि ज्यादातर इमारतें पत्थरों से ही बनाई जाती थीं। मगर भारत में अंग्रेजों के आने के बाद हालात नाटकीय ढंग से बदलने लगे। वे कौन से कारण थे जिन्होंने इस बदलाव में अहम भूमिका अदा की? ईंट भट्ठों में तकनीकी नए प्रयोग कौन-कौन से थे? इससे समाज के सामाजिक ताने-बाने पर किस तरह के असर पड़े?

इस चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए दो पहलुओं पर गौर करना जरूरी है। एक बात तो यह है कि अठारहवीं सदी तक ईंटों को क्लैम्प्स में ही पकाया जा रहा था। इसके बाद यह काम मुख्य रूप से एफसीबीटीके के भट्ठों में तब्दील हो गया (समीर मैथल, 2013)। दूसरी बात, जैसा कि पीछे जिक्र किया गया था, 1857 में जर्मनी में एफ ई हॉफमैन द्व रा एक ऐसा ईंट भट्ठा तैयार किया गया जिसमें लगातार आग जारी रह सकती थी। पहला भट्ठा चिमनी के इर्द-गिर्द गोलाकार, मेहराबदार सुरंग की शक्ल में बनाया गया था। तीस साल बाद ब्रिटिश इंजीनियर डब्ल्यू बुल ने हॉफमैन भट्ठे का मेहराब रहित संस्करण तैयार किया जिसे अब बुल्स ट्रेंच किल्न कहा जाता है। पाकिस्तान, भारत, बांगला देश और म्यांमार में बुल्स ट्रेंच किल्न का बहुत बड़े पैमाने पर प्रचलन है, मगर इन देशों के बाहर इसका ज्यादा इस्तेमाल नहीं होता (गेट)। अठारहवीं सदी के आखिर में ईंट भट्ठा तकनीक में आए इस बदलाव का कोई कारण जरूर रहा होगा। इसके अलावा यह भी गौरतलब है कि पाकिस्तान, भारत, बांगलादेश और म्यांमार के अलावा दुनिया के शेष भागों में बुल्स ट्रेंच किल्न क्यों प्रचलित नहीं हो पाया। अठारहवीं सदी के आखिर में बुल्स ट्रेंच किल्न के रूप में आए इस 'तकनीकी नए प्रयोग' के ऐतिहासिक विश्लेषण से यह समझा जा सकता है कि इन नए प्रयोगों के साधन और उद्देश्य क्या थे।

ईंट, ब्रिटिश साम्राज्यवाद और तकनीकी नए प्रयोग

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद दो सौ साल से ज्यादा समय तक कायम रहा। इसकी शुरुआत 1613 में हुई जब इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी (ईआईसी) को मुगल सम्राट जहांगीर से सूरत में एक कारखाना खोलने का परमिट मिला था। बाद में जब उन्होंने अपना साम्राज्य फैलाना शुरू किया तो 1757 में पलासी में बंगाल के नवाब के खिलाफ और 1764 में बक्सर में अवध के नवाब मीर कासिम, मुगल बादशाह

30 Those of most local importance are the Badalna and Mehra of Saharanpur; the Baheliya, Baresra, Bharatduari, and Desi of Bulandshahr; the Bidaniya and Chakhri of Agra; the Dilliwal of Bareilly; the Baheliya of Budaun; the Gaur of Moradabad; the Gadhila of Shahjahanpur; the Bakhri, Chakhri, and Pundir of Bamla; the Kasauncha of Jaunpur; the Ajudhyabasi, Belkhariya, Dakkhinaha, Desi, and Sarwariya of Gorakhpur; the Birhariya and Dakkhinaha of Basti; the Bahraichiya and Daryabadi of Bahraich; and the Bam-puriya of Gonda. {W. Crooke, 1896, #82175} pp. 337

शाह आलम II की संयुक्त सेना के खिलाफ ऐतिहासिक लड़ाइयां लड़ीं। इन लड़ाइयों के बदौलत उन्हें बंगाल प्रेसीडेंसी का राजनीतिक नियंत्रण हासिल हो गया। अंग्रेजों को इन इलाकों से राजस्व वसूल करने का अधिकार औपचारिक रूप से 1765 में मिला। इसी प्रकार, चलते-चलते 1860 तक आधुनिक भारत, पाकिस्तान और बंगला देश के विशाल भूभाग ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन चुके थे। देश के विभिन्न भागों में बहुत सारी रियासतें थीं और वे भी राजनीतिक तौर पर अंग्रेजों के नियंत्रण में थीं, हालांकि रोजमर्रा के शासकीय फैसलों के मामले में उन्हें कुछ छूट मिली होती थी। ईस्ट इंडिया कंपनी का राज 1857 की बगावत के बाद खत्म हुआ जब हिंदुस्तानी सिपाहियों ने अपने अंग्रेज अफसरों के खिलाफ बगावत कर दी। इस बगावत को कुचल दिया गया और इसके बाद भारत ईस्ट इंडिया कंपनी से सीधे इंग्लैंड की सरकार के नियंत्रण में चला गया। ईस्ट इंडिया कंपनी के दौर में शासन की संरचना अंग्रेजों के दो-मुंहेपन को दिखाती है जहां राजनीतिक और आर्थिक हित एक-दूसरे में मिले हुए थे। उस जमाने में गवर्नर जनरल इन काउंसिल के तहत गवर्नमेंट ऑफ इंडिया का मुख्यालय कलकत्ता में था और बॉम्बे प्रेसीडेंसी, मद्रास प्रेसीडेंसी और बंगाल प्रेसीडेंसी उसकी इकाइयां थीं। गवर्नर जनरल लंदन स्थित इंडिया ऑफिस सेक्रेटेरीएट के माध्यम से लंदन में ईस्ट इंडिया कंपनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को रिपोर्ट करता था। यह कोर्ट संसद द्वारा स्थापित बोर्ड ऑफ कंट्रोल के तहत आता था और उसका अध्यक्ष तत्कालीन मंत्रिमंडल का सदस्य होता था। इस कड़ी के माध्यम से भारत के मसले ब्रिटेन के संसद में पहुंच जाते थे और उसी के पास इन विवादों पर फैसला लेने का अंतिम अधिकार होता था। (जॉन हर्ड एवं इयान जे कर, 2012, पृष्ठ 6)।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को एक 'सिविलाइज़िंग मिशन' यानी 'बर्बर' समाज को 'सभ्य' बनाने का मिशन भी कहा जाता रहा है। 1790 के दशक की शुरुआत तक आते-आते अंग्रेजों ने भारत में शासकीय सिद्धांतों की एक मोटा-मोटी रूपरेखा तैयार कर ली थी जो उपयोगितावादी सिद्धांतों पर आधारित थी। इसके मुख्य उसूल ये थे : निजी संपत्ति को सुरक्षा दी जाए, कानून का शासन हो और पश्चिमी शिक्षा के माध्यम से समाज में 'सुधार' लाए जाएं (टॉमस आर मेटकाफ, 1995)। बहुत सारे लोग इस राय से इत्तेफाक नहीं रखते और वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को 'देश के संसाधनों के कुशलतापूर्वक और सुनियोजित ढंग से विकास और दोहन' पर केंद्रित निरंकुश शासन मानते हैं (ज्ञान प्रकाश 1999)। वे मानते हैं कि ब्रिटिश भारत एक छावनी था जिसमें 'निर्णय प्रक्रिया में सेना का चौतरफा दबदबा था, संसाधनों के आबंटन में सेना को वरीयता दी जाती थी... राजनीतिक व योजना संबंधी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सेना के इस्तेमाल या उसके इस्तेमाल की धमकी का खुलकर इस्तेमाल किया जाता था' (डगलस एम पीयर्स, 2007)। डेनियल आर हैड्रिक का कहना है कि साम्राज्यवाद के लिए कुछ तकनीकी सुधार निश्चित रूप से अनिवार्य थे। लिहाजा, अंग्रेजों ने बाढ़ पर नियंत्रण, नहरों के निर्माण, कोयले की खुदाई, टेलीग्राफ नेटवर्क के विस्तार और युद्ध तंत्र में सुधार के उद्देश्य से विज्ञान और तकनीक का बड़े पैमाने पर शुरू कर दिया था। इन गतिविधियों, खास तौर पर डाक बंगलों, छावनियों, नदियों के पुश्तों, नहरों के निर्माण और रेलवे नेटवर्क के निर्माण, के लिए बड़ी तादाद में ईंटों की जरूरत थी। इसके लिए निर्माण सामग्री की निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित करना लाजिमी था। इसके लिए ईंटों के निर्माण की पद्धति में सुधार लाना जरूरी था। आगे हमने इस बारे में बात की है कि ईंटों की इस मांग को कैसे पूरा किया गया, किस तरह के इनोवेशन किए गए और तकनीक के हस्तांतरण व प्रयोग से भारत की संपदा को बाहर ले जाने और अपनी निरंकुश राजनीतिक सत्ता को मजबूती प्रदान करने के लिए क्या कदम उठाए गए[31] (ज्ञान प्रकाश, 1999)।

ब्रिटिश भारत में सिंचाई नहरों का निर्माण और ईंटों की जरूरत

अंग्रेजों ने भारत में सिंचाई के लिए नहरों का विशाल जाल तैयार किया। नीतियों के स्तर पर यह योजना अकाल को रोकने, नियमित राजस्व वसूली, प्रतिरोधी आदिवासी कबीलों पर नियंत्रण, नकदी फसलों की खेती के विस्तार, कर वसूली में इजाफे, बेहतर खेती और राजनीतिक स्थिरता के उद्देश्यों से जुड़ी हुई योजना थी। ईंटों की जरूरत सिंचाई नहरों के निर्माण के साथ सीधे तौर पर जुड़ी हुई थी।[32] गौरतलब है कि केवल सुलानी एक्विडक्ट के लिए ही ईंटें बनाने के वास्ते लगभग 3,500 मजदूर पांच साल तक आठ महीने

31 Gyan Prakash in Another Reason: Science and the Imagination of Modern India says, "European ideologues of colonialism were conscious of the paradox of practising despotism in order to project the ideals of freedom, but there was nothing they could do to close the deep internal rift in their discourses. Compelled to use universal reason as a particular means of rule, the British positioned modernity in colonial India as an uncanny double, not a copy, of the European original – it was almost the same, but not quite. In the colonial context the universal claims of science always had to be represented, imposed, and translated into other terms. This was not because Western culture was difficult to reproduce, but because it was dislocated by its functioning as a form of alien power and thus was forced to adopt other guises and languages. Science had to be tropicalised, brought down to the level of natives and even forced upon them, so the argument went, if Britain was to do its work in India."

32 As with any technology, canal irrigation was not 'neutral' in its effects. It was intended to serve the perceived interests of its masters, in much the same way as the earlier irrigation works were. {Ian Stone, 2002, #90544}

प्रति वर्ष काम करते रहे थे। इसे समझने के लिए देखें कि इयान स्टोन (2012) ने *'कैनाल इरिगेशन इन ब्रिटिश इंडिया : पर्सपेक्टिव्ज़ ऑन टेक्नोलॉजिकल चेंज इन ए पेजेंट सोसाइटी'* ने क्या कहा है :

''नहरों का विशाल नेटवर्क तैयार करने और चलाने के लिए बड़े पैमाने पर मानव एवं भौतिक संसाधनों की जरूरत थी। निर्माण के चरण में बड़ी तादाद में कुशल मजदूरों की भर्ती करना जरूरी था। इसके अलावा निर्माण सामग्री के संग्रह या निर्माण और मजदूरों की विशाल फौज तैयार करना भी जरूरी था। 1920 के दशक तक आते-आते अकेले संयुक्त प्रांत में लगभग 2,000 मील लंबी नहरें और 14,000 मील से ज्यादा लंबी सरकारी उपनहरें और अन्य धाराएं खोदी जा चुकी थीं। इनमें से कुछ नहरें दुर्गम इलाकों में खोदी गयीं, जैसे कि गंग नहर के ऊपरी भाग। इन नहरों पर बहुत सारे झरने, बम्बे और झालें भी बनाई गईं। गंग नहर पर प्रत्येक डिवीजन के लिए एक कार्यपालक इंजीनियर तैनात किया गया था। ऐसे एक इंजीनियर के तहत आम तौर पर 5,000 मजदूर थे और सैकड़ों बैलगाड़ियां रोजाना काम पर लगी रहती थीं। सोलानी एक्विडक्ट के लिए 3,500 मजदूरों को पांच साल तक हर साल सात-आठ महीने तक ईंटें बनाने का काम दिया गया था। निर्माण कार्य में 6 साल तक 2,750 मजदूर नियमित रूप से काम करते रहे (पृष्ठ 57)।

"... इस तरह, उदाहरण के तौर पर, गंग नहर पर एक कार्यपालक इंजीनियर और उसके दो सहायक केवल माल जुटाने पर ही लगे रहते थे। उनका मुख्य काम था - बड़े पैमाने पर ईंट और चूना तैयार करवाना और स्थानीय जंगलों से लकड़ी खरीदना। दरअसल, शुरुआती दिनों में नौकरी पर आने वाले सभी इंजीनियरों को सामान्य ट्रेंच किल्न सिस्टम से ही ईंटें बनाना सिखाया जाता था। उन्हें यह भी सिखाया जाता था कि मैदानों में मिलने वाले टीलों से चूना कैसे तैयार किया जाता है। सफेद चूने और ईंटों की धूल के साथ इस चूने को मिलाने पर सिंचाई संबंधी निर्माण के लिए पर्याप्त मजबूती आ जाती थी। हालांकि इंजीनियर लंबे समय तक ईंटें बनाने में अपना समय देते रहे, मगर इस बीच ईंटों की आपूर्ति के लिए ठेकेदार भी मैदान में आ चुके थे। उदाहरण के लिए, 1882 में मियांपुर में हैडवर्क्स के लिए एक बड़ी यूरोपीय कंपनी ने ईंटों का निर्माण किया था। (पृष्ठ 59-60)।

भारतीय रेलवे का निर्माण और ईंटों की जरूरत

वर्ष 1850 से अंग्रेज भारत में रेलवे नेटवर्क के निर्माण पर निकल चुके थे। 20 अप्रैल 1853 के एक आधिकारिक पत्र में गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी ने अनुमोदित किया था कि कलकत्ता-दिल्ली-मद्रास-बॉम्बे-नॉर्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंसेज़ को जोड़ने के लिए एक अखिल भारतीय ट्रंक लाइन यानी रेलमार्गों का जाल बिछाया जाए ताकि देश के सभी राजनीतिक, आर्थिक और रक्षा संबंधी केंद्रों को आपस में जोड़ा जा सके। सिंचाई नहरों के निर्माण की तरह यह भी केवल भारतीयों के विकास का प्रश्न नहीं था। अपने एक पत्र में डलहौजी ने बताया है कि राजनीतिक, सैनिक और आर्थिक स्तर पर रेलवे नेटवर्क से औपनिवेशिक ब्रिटेन को कितना बड़ा फायदा हो सकता है।[33] इस योजना को इतनी तेजी से लागू किया गया कि 1870 तक आते आते 6,541 मील के रेलवे नेटवर्क पर रेलगाड़ी चलने लगी थीं। मार्च 1900 तक आते-आते यह नेटवर्क 23,627 मील की संख्या तक पहुंच चुका था। अब पूरे उपमहाद्वीप में ट्रंक लाइन और बहुत सारी छोटी लाइनें यहां-वहां फैल चुकी थीं (इयान जे कर, 1995)।

रेलवे के निर्माण से नए तकनीकी प्रयोग, तकनीक के हस्तांतरण और तकनीक के प्रसार के मुद्दे भी सामने आते हैं। खास तौर पर साम्राज्यवादी विस्तार के प्रसंग में ये महत्वपूर्ण मुद्दे बन जाते हैं। भारत में आधुनिक तकनीक नहीं थी, लिहाजा आधुनिक रेलवे तकनीक ब्रिटेन से भारत में लाई जानी थी। इस तकनीक के हस्तांतरण में रेलवे लाइनें बिछाने, रेल की पटरी तैयार करने, सुरंगें बनाने, छोटे-छोटे पुलिया और विशाल पुल बनाने, पटरियों के निर्माण, प्लेटों के निर्माण और सबसे बढ़कर रेल के इंजनों व डिब्बों के निर्माण की क्षमता विकसित करना भी शामिल था। उस समय भारत में रेल निर्माण की गुणवत्ता अमेरिका के मुकाबले बेहतर थी, मगर साम्राज्यवादी भारतीय सरकार पटरी, स्लीपर, प्रीफेब्रिकेटेड ब्रिज और रेल के इंजन, आदि ब्रिटेन से बने-बनाए ही आयात करती थी (अमित के शर्मा 2011)। डेनियल आर हैड्रिक का कहना है कि अमेरिका और पश्चिमी यूरोप में रेलवे के विकास से लौह एवं मशीन निर्माण उद्योगों व रोजगारों में काफी इजाफा हुआ था। भारत में ऐसा नहीं हो पाया। "अपने शानदार रेल नेटवर्क के बावजूद भारत बीसवीं सदी

33 'Immeasurable' advantages, writes Dalhousie, would accrue to a colonial administration composed of a 'comparative handful' of British administrators and soldiers scattered over the subcontinent. Railway would enable Britain 'to bring the main bulk of its military strength to bear upon any given point in as many days as it would now require months, and to an extent which at present is physically impossible.' The 'commercial and social advantage' of railways also received prominent mention. These included an increase in trade between India and Britain: and more Indian produce would be transported to Britain and more manufactured British goods would be sold in India. Railways would encourage enterprise, multiply production, facilitate the discovery of latent resources, increasing national wealth and encourage 'progress in social development' similar to that which occurred in Europe and the USA. John Hurd & Ian J. Kerr. (2012). India's Railway History: A Research Handbook. Leiden. Boston: Brill. pp. 9–10

में भी लंबे समय तक अविकसित ही रहा"[34] (डेनियल आर हेड्रिक, 2009, पृष्ठ 107-108)।

सिंचाई नहरों की तरह रेलवे के निर्माण - पुलों, पुलियाओं, स्टेशनों और कार्यशालाओं के निर्माण के लिए भी ईंटों की बेहिसाब मांग पैदा हुई। इसके लिए ईंट बनाने वाले मजदूरों की भी बड़ी तादाद में जरूरत हुई। यह ऐसी मांग थी जिसकी भारत के इतिहास में तब तक उम्मीद नहीं की गई थी। इयान कर का कहना है कि बंगाल और उत्तर-पश्चिमी प्रांत में ईस्टर्न इंडिया रेलवे (ईआईआर) के निर्माण में देरी की मुख्य वजह ही यह थी कि वहां ईंटों की आपूर्ति पर्याप्त नहीं थी। ईंटों की विशाल मांग को आप इस उदाहरण से समझ सकते हैं : 1858 के आखिरी 6 महीनों में ईआईआर के हलोहर डिवीजन के 17 मील हिस्से के निर्माण के लिए 20 लाख ईंटें पकाई गई थीं, 45 लाख ईंटें पकाए जाने के लिए भट्ठों में जमा दी गई थीं और 70 लाख कच्ची ईंटें तैयार थीं जिन्हें मजदूरों के अभाव की वजह से भट्ठों में जमा नहीं किया जा रहा था (इयान जे कर, 1995, क्र.86573) [आईओएल ऐण्ड आर, पी/पीडब्यूडी/ई/58, बंगाल आरआर लेटर्स, संख्या 30-1859, दिनांक 19 मई 1859 से उद्धृत]। फुटनोट संख्या 50 में यह भी कहा गया है कि उसी दौरान मुंगेर डिवीजन में 75 लाख ईंटें बनाई गई थीं। डफरिन ब्रिज के लिए 18,76,289 घन फीट ईंटों की जरूरत थी (वाल्टन, एमपीआईसीई, 101, 1890, पृष्ठ 21)। यहां हम मान सकते हैं कि उस समय ईंटों का उत्पादन क्लैम्प सिस्टम से किया जा रहा होगा क्योंकि 1850 से 1900 के बीच तक क्लैम्प सिस्टम का कोई विकल्प सामने नहीं आया था।

ईंट उत्पादन की व्यवस्था में नए प्रयोग

यहां एक ऐसी स्थिति पैदा हो गई थी जिसके लिए ईंट उत्पादन की तकनीक में फौरन नए प्रयोग की जरूरत थी, इसके लिए ईंट उत्पादन की पूरी व्यवस्था को बदलना जरूरी था। तकनीकी बदलाव की जरूरत इसलिए महसूस की जा रही थी क्योंकि कुम्हार समुदाय के साथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी ईंट निर्माण की जो तकनीक चली आ रही थी, वह रेलवे निर्माण के लिए बेहिसाब ईंटें पैदा करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। रेलवे इंजीनियरों का मानना था कि परंपरागत भारतीय व्यवस्था में जो ईंटें पकाई जाती थीं, वे एक जैसी नहीं होती थीं। उनकी आकृति टेढ़ी-मेढ़ी होती थी और प्रायः उनमें तरेड़ पड़ जाती थी। इसके अलावा, बड़ी तादाद में ईंटों के निर्माण के लिए बड़ी मात्र में कच्चे माल, विशाल पूंजी और बहुत सारे मजदूरों को एकजुट करना भी जरूरी था जो भारत में प्रचलित छोटे पैमाने की ईंट उत्पादन व्यवस्था के लिए संभव नहीं था। जैसा कि पीछे हमने देखा था, देशी तकनीक का विकास औपनिवेशिक 'सिविलाइजिंग' मिशन का हिस्सा नहीं था। जैसा कि हम आगे चर्चा करेंगे, अंग्रेजों को ईंट निर्माण के लिए कोई नई तकनीक लाने की परवाह नहीं थी। बाद में अंग्रेजों ने जो भारी बदलाव किए, उनमें ईंटों के उत्पादन की व्यवस्था में बदलाव भी मुख्य था। इयान जे कर का कहना है कि जब कोई इंजीनियर किसी पुल, रेलवे लाइन या इमारत का निर्माण करने के लिए निकलता था, तो एक प्रभावी ईंट निर्माण व्यवस्था विकसित करना उसके लिए सबसे महत्वपूर्ण काम होता था। बढ़िया ईंटों की भारी मांग के चलते भारत में ईंट उत्पादन के क्षेत्र में एक नई व्यवस्था की शुरुआत हुई। ये सुधार मुख्य रूप से कार्यप्रणाली, मजदूरों की गोलबंदी और ईंटों के उत्पादन में मजदूरों की तैनाती के ढर्रे में दिखाई दिए। ईंट बनाने की भट्ठी यानी क्लैम्प स्थाई नहीं होती थी। उसे एक खास निर्माण कार्य के लिए बनाया जाता था और काम पूरा होने पर तोड़ दिया जाता था।

इसे समझने के लिए आइए, इयान जे कार (1995) द्वारा बॉम्बे बड़ौदा ऐण्ड सेंट्रल इंडिया रेलवे (बी.बी. एण्ड सी.आई.आर.) के निर्माण के दौरान ईंट उत्पादन की स्थिति के बारे में दी गई स्थिति को देखें :

> "बी.बी. एण्ड सी.आई.आर. के इंजीनियरों और ओवरसियरों को 1858 में ईंट और चुना बनाने के बारे में विस्तृत जानकारियां दी गई थीं। इसके तहत सबसे पहले मिट्टी और पानी की पर्याप्त मात्र का इंतजाम किया जाना था। जहां मिट्टी और पानी जमा किया जाता था, उसके बगल में दो एकड़ की जगह साफ करनी थी, जिसमें प्रतिदिन 25,000 ईंटें फैलाई जा सकें। दो रहट जैसी चक्की होनी थी, जिन्हें बैलों से खींचा जाना था और उनमें मिट्टी और पानी को मिलाकर आटे की तरह गूंधा जाना था। पथेरों के लिए 12,000 फुट का शेड तैयार किया गया था। इन ईंटों के लिए एक लाख ईंटों वाली क्षमता के तीन भट्ठे बनाए गए थे।

34 Daniel R. Headrick compares the railway development in India and Japan. "It is instructive to contrast the Japanese railways with those of India in the same period. In 1890, Japan had 1,000 miles of railroads compared to India's 17,000; 40 years later, Japan had 16,000 miles to India's 44,000. Yet, because India was a colony of Great Britain, all the engineers and almost all its rails and equipment were imported from Britain." He further quotes from a report of a committee that investigated the railroads in 1921: "At the date of the last report there were employed on the railways of India about 710,000 persons; of these, roughly 700,000 were Indians and only 7,000 Europeans, a proportion of just 1 per cent. But the 7,000 were like a thin film of oil on top of a glass of water, resting upon but hardly mixing with the 700,000 below. None of the highest posts are occupied by Indians..."

मजदूरों का विवरण इस प्रकार था :

- 25 पथेरे
- सूखी ईंटों को ढोने के लिए 25 सहायक - इसके लिए लड़कों को रखा जाएगा और उन्हें महिलाओं द्वारा मिट्टी की खुदाई की दर से ज्यादा मेहनताना नहीं मिलेगा
- 13 ताकतवर आदमी जिनके पास फावड़े होंगे, उन्हें मिट्टी का काम करने वालों से ज्यादा मजदूरी मिलेगी। वे सूखी हुई ईंटों को उठाएंगे
- 37 आदमी गारा तैयार करेंगे और उसे चक्की में डालेंगे
- 13 आदमी या औरतें रेहड़ी में गारा भरकर पथेरों के पास ले जाएंगे
- 20 आदमी भट्ठों में ईंटें लगाएंगे
- 20 आदमी भट्ठे की सफाई और जलाई करेंगे
- 5 अतिरिक्त आदमी होंगे

इसके अलावा जलावन और मिट्टी की आपूर्ति के लिए दूसरे लोग रखने का सुझाव दिया गया था, जो आम तौर पर छोटे ठेकेदार होंगे। यही लोग तैयार ईंटों को निर्माण स्थलों पर पहुंचाएंगे। पीतल के सांचे, जो ब्रिटिश डिजाइन और उम्मीद के मुताबिक मंगाए जाएंगे, उन्हें लकड़ी के बने भारतीय सांचों के मुकाबले बेहतर माना गया, हालांकि शुरुआत में भारतीय पथेरों ने धातु के इन सांचों का विरोध किया था क्योंकि वे भारी होते थे और उनसे कच्ची ईंट आसानी से नहीं निकल पाती थी। इस प्रतिरोध को जल्दी ही दबा दिया गया क्योंकि ईंटों की पथाई का मेहनताना प्रति व्यक्ति दर पर अदा किया जाता था। यह भी मजदूरों ने महसूस किया कि जब वे पीतल के सांचों पर महारत हासिल कर लेंगे, तो लकड़ी के सांचों के मुकाबले ज्यादा तेजी से ईंटें बना पायेंगे। इसका मतलब यह था कि मालिक के लिए ज्यादा अधिशेष मूल्य पैदा करने में मजदूरों को भी साझीदार बना लिया गया था (पृष्ठ 144)।

इस बारे में स्टीक निर्देश दिए गए कि पथेरों को किस मुद्रा में बैठकर काम करना चाहिए, उन्हें ईंटों के चट्ठे कैसे बनाने चाहिए, सूखी हुई ईंटों को शेड से हटाकर कब पिछली कतारों में और उसके बाद कब भट्ठे में ले जाना चाहिए। यह भी बताया गया था कि भट्ठे में कब आग लगानी होगी और भट्ठों को कब खाली करना होगा। सटीकता, सफाई, तरतीब और अनुशासन पर जोर दिया गया। जो मजदूर तय प्रक्रिया का पालन न कर सके, उन पर जुर्माने का भी सुझाव दिया गया। कुल मिलाकर सारी चर्चा फैक्ट्री अनुशासन की शब्दावली से भरी हुई थी। ओवरसियरों को कुलियों पर एहतियात से ध्यान रखना पड़ता था क्योंकि अगर 'कोई भी महकमा अपना काम ठीक से नहीं करता, तो दूसरे महकमे पर फौरन उसका असर पड़ता था।' रोजाना 25,000 ईंटों का लक्ष्य हासिल करने के लिए बहुत सख्त समय-सारण ी और अनुशासन की जरूरत थी। जलाने के लिए भट्ठे को भरने में 20 लोगों को 5 दिन लगते थे। जलाई में चार दिन लगते थे। भट्ठे को ठंडा होने में 6 दिन लगते थे और भट्ठे को खाली करने के लिए रेहड़ी वाले को 4 दिन लगते थे। इस तरह, इन भट्ठों में हर 22 दिन में आग घुमाई जा सकती थी जिसके बीच दो रविवार और एक सफाई का दिन भी जोड़ा गया था। निःसंदेह, वास्तविक तस्वीर इतनी साफ-सुथरी नहीं थी, फिर भी बी.बी. एण्ड सी.आई.आर. (बॉम्बे, बड़ौदा, एण्ड सेंट्रल इंडिया रेलवे) के इंजीरियरों का उद्देश्य स्पष्ट था। उनकी जिम्मेदारी थी कि ईंट उत्पादन को एक औद्योगिक गतिविधि में तब्दील करें : एक सुव्यवस्थित, तर्कसंगत, अनुशासित प्रक्रिया जिसमें हर मजदूर निश्चित शर्तों के अनुसार अपनी तय जिम्मेदारी को निभाए ताकि 'फैक्टरी' निश्चित समय के भीतर ईंटों का तय कोटा तैयार कर सके (इयान जे कर, 1995, पृष्ठ 145)''।

इस तरह भारत में ईंट उत्पादन की प्रक्रिया एक औद्योगिक गतिविधि में तब्दील होती जा रही थी। इसका मतलब यह था कि सारी गतिविधियां सुनियोजित थीं, उन्हें ईंटों के सामूहिक उत्पादन के लिए एक निश्चित अनुशासन में ढाल दिया गया था। इसका एक और महत्वपूर्ण आयाम था श्रम विभाजन, जिसमें हर मजदूर को एक खास और निश्चित काम दिया गया था। अभी तक सारे काम कुम्हार खुद ही कर लिया करते थे, मगर अब हर काम के लिए अलग-अलग मजदूर तैनात कर दिए गए थे।[35] अंग्रेजों द्वारा लागू की गई श्रम व्यवस्था रेलवे लाइनों और नहरों के निर्माण की तर्ज पर भट्ठों में आई थी और यह व्यवस्था उनके जाने के बाद भी कायम है। ईंट निर्माण के मामले में ये सबसे मुख्य नए प्रयोग नहीं थे। इस क्षेत्र में सबसे मुख्य बदलाव गारा तैयार करने के लिए बैलों से चलने वाली रहट/ चक्की और लकड़ी के परंपरागत सांचों के स्थान पर पीतल के सांचों के प्रचलन के रूप में सामने आया। मशीनी ढंग से गारा तैयार करने की प्रक्रिया अब बहुत प्रचलित नहीं है। इसी तरह पीतल के सांचे भी अब दिखाई नहीं देते। ईंटों की पथाई के लिए ये पूरे भारत में लोकप्रिय नहीं हो पाए। जो नए बदलाव अंग्रेजों के जाने के बाद भी

35 Traditionally, same people from the community engaged in moulding of bricks, stacking and firing of bricks.

कायम रहा, वह था - मजदूरों को दूर-दूर से लाने की व्यवस्था और भट्ठों में निश्चित श्रम विभाजन के अनुसार इकाई दर पर भुगतान की व्यवस्था।

भट्ठों में मजदूरों को लाने की नई व्यवस्था

हम जिस दौर की चर्चा कर रहे हैं, उस जमाने में मजदूरों की मांग बहुत ज्यादा थी। इसके अलावा ऐसे लोगों की भी बहुत ज्यादा जरूरत थी जो मजदूरों को दूर-दूर से ला सकें और ऐसे लोगों को भी भट्ठे पर ला सकें जो परंपरागत रूप से ईंटें नहीं बनाते थे। अंग्रेजों ने मजदूरों को जुटाने की एक ऐसी व्यवस्था विकसित की थी जो अभी तक ईंट निर्माण उद्योग में कहीं नहीं थी। इसके लिए वे ठेकेदारों/मिस्त्रियों/सरदारों/मकदूमों के माध्यम से मजदूरों को पेशगी के बदले काम करने के लिए तैयार करते थे और एक बार कार्यस्थल पर आ जाने के बाद इन मजदूरों पर उनके ठेकेदार/सरदार/मकदूमों का ही नियंत्रण चलता था।

मजदूरों को लुभाने के लिए पेशगी का इस्तेमाल

इयान जे कर (1995) ने बताया है कि रेलवे निर्माण के लिए अंग्रेजों और उनके ठेकेदारों को मजदूर इकट्ठा करने में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। उन्होंने यह भी बताया है कि मजदूरों को ललचाने के लिए उन्हें पेशगी भुगतान का तरीका क्यों अपनाना पड़ा। इसके लिए गंगा पर कलकत्ता (सियालदह) से कुश्तिया तक के 110 मील की ईबीआर पटरी का उदाहरण लिया जा सकता है। इस हिस्से के निर्माण का ठेका ब्रासी, पैक्स्टन, वाईथस ऐण्ड हेन्सी को दिया गया जो ब्रिटेन के नामी ठेकेदार माने जाते थे। 31 दिसंबर 1858 को उन्हें 10,45,000 ब्रिटिश पाउंड[36] की कीमत पर ये ठेके दिए गए थे। हेंसी के पत्र से पता चलता है कि न केवल उन्हें कम मजदूरी पर मजदूर जुटाने में मुश्किल पेश आ रही थी, बल्कि अंग्रेजों ने ईस्टर्न इंडिया रेलवे (ईआईआर), कलकत्ता एवं दक्षिण-पूर्वी लाइन यानी कलकत्ता सर्कुलर कैनल पर सरकारी कार्यों, माता भंगा नदी के रास्ते में मरम्मत और कलकत्ता निकासी व्यवस्था से संबंधित निर्माण कार्यों आदि के लिए मजदूरों को लुभा कर लाने का काम ठेकेदारों को सौंप दिया था।[37] हेंसी ने लिखा है, "हमें जल्दी ही पता चल गया था कि अगर हम अपने पड़ोसियों के उदाहरण का अनुसरण नहीं करते और परोक्ष रूप से इस व्यवस्था पर मंजूरी नहीं देते तो हमें लाइन के ठीक आसपास के गांवों में रहने वाले मजदूरों के अलावा कोई कुली (मजदूर) नहीं मिलता।[38] वे बिचौलियों के माध्यम से पेशगी देकर मजदूरों को ललचाने के चलन का भी उल्लेख करते हैं। उनके मुताबिक, अंग्रेजों ने भारतीय ठेकेदार रखे हुए थे जो अपने नीचे मिस्त्री/सरदार/मकदूम रखते थे और ये लोग दूर-दूर के इलाकों में जाकर पेशगी के बदले मजदूर इकट्ठा करके लाते थे। इयान जे कर लिखते हैं, ".... मजदूरों के नजरिये से ये पेशगी रकम बहुत सारे उद्देश्यों की पूर्ति कर देती थी। इससे उन्हें कार्यस्थल तक जाने के लिए जरूरी पैसा मिल जाता था और दूसरी तरफ उनके पास बरसात के मौसम में बेरोजगारी के दिन काटने का जरिया भी आ जाता था। इसके सहारे मजदूर अपने छोटे-मोटे कर्जे भी चुका देते थे और गांव के सत्ता संबंधों से छुटकारा पा जाते थे। पेशगी के भुगतान के साथ ही देने वाले का लेने वाले पर अच्छा-खासा दबदबा और नियंत्रण बन जाता था। पेशगी रकम से मजदूर हासिल करने और उनको रोके रखने में भी मदद मिलती थी।"[39] जैसा कि हमने पिछले भाग में देखा था, नगद या सामान के रूप में लिए गए कर्जे के बदले काम करने वाले मजदूर - यानी बंधुआ मजदूर - तो भारत में पहले भी हुआ करते थे, मगर तब वे एक खेतिहर और घरेलू व्यवस्था के तहत थे। अंग्रेजों ने इस व्यवस्था को अपनाया, फैलाया और उसे एक औद्योगिक तथा विस्तृत श्रम बाजार की संस्थागत मान्यता दे दी।

जत्थों (गैंग) में काम करना और जत्थेदार (गैंगर) की परिघटना

मजदूरों को रेलवे निर्माण स्थलों पर जुटाना और उन्हें अलग-अलग तरह के जत्थों या *गैंग* की इकाईयों में काम सौंपना नई कार्य व्यवस्था का एक और महत्वपूर्ण पहलू था। इसके लिए इयान जे कर ने गैंगर शब्द का प्रयोग किया है (जिसे हिंदी में जत्थेदार कहा जा सकता है)। उन्होंने गैंगर शब्द औपनिविशक दस्तावेजों से उठाया है। इन दस्तावेजों के मुताबिक गैंगर का मतलब होता था गैंग का नेता। ये गैंगर मुखदम, सरदार या मिस्त्री होते थे और वे विभिन्न प्रकार के काम करते थे। वे मजदूरों को पेशगी भुगतान करते थे और हर सीजन में उन्हें लेकर आते थे। "स्थानीय स्तर पर मजदूर नहीं मिलते थे, इसलिए मजदूरों को इकट्ठा करने और लाने की मुश्किल हर

36 Work began in 1859 and line was opened for traffic in November 1862. {Ian J. Kerr, 1995, #86573} pp. 50 Source: Footnote 21 says that the material comes from IOL&R, L/PWD/3/62, Bengal RR Letters, No. 42, dated 25 June 1863. The particular document in question is Brassey, Paxton, Wythes & Co to W. Purdon dated 19 February 1863 in which they set out their final accounts, explain why it cost so much more than estimated, and ask for some response.

37 ibid. pp. 50

38 ibid. pp. 51

39 ibid. pp. 118

बरसात के बाद नए सिरे से पैदा हो जाती थी। इससे निपटने के लिए फोरमैन, गैंगरों, मिस्त्रियों और मकदूमों को 200-300 मील के घेरे में पड़ने वाले कस्बों और गांवों की तरफ रवाना किया जाता था। उन्हें पैसे दिए जाते थे ताकि वे मजदूरों को थोड़ी-सी रकम पेशगी देकर ला सकें। वे उन्हें केवल उतनी ही रकम देते थे जिसके सहारे मजदूर कार्यस्थल तक आ सकें। इस तरह जो मजदूर इकट्ठा किए जाते थे, उन्हें कोंकण या दक्कन स्थित नजदीकी रेलवे स्टेशन तक पहुंचाया जाता था, जहां खंडाला या कम्पुली तक का उनका किराया अदा किया जाता था या वे पैदल घाट पर चलते जाते थे।"[40] कार्यस्थल पर 'गैंग' के सदस्यों पर 'गैंगर' का ही नियंत्रण होता था।[41] मजदूरों को अपनी मजदूरी भी 'गैंगरों' से ही मिलती थी और भुगतान से पहले वे उसमें से अपना हिस्सा काट लेते थे।[42] गैंगरों के भूमिका और पेशगी के निर्णायक महत्व से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये मजदूर अपनी मर्जी से अपनी श्रमशक्ति बेचने के लिए कार्यस्थलों पर नहीं जाते थे, बल्कि वे बंधुआ मजदूर के तौर पर जाते थे जिसे पेशगी लिए गए कर्जे को चुकाने के लिए अपनी मजदूरी बेचनी पड़ती थी।

जाति आधारित गैंग

'गैंगरों' और ठेकेदारों की ताकत का एक और पहलू था जो मजदूरों पर उनके नियंत्रण को 'निरंकुशवादी' रूप दे देता था। ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता अपने पूंजीवादी निर्माण उद्यमों एवं संबंधित गतिविधियों में मजदूरों की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए भारत में पहले से प्रचलित जाति एवं कुटंबीय संरचना का खुल कर इस्तेमाल करती थी। इसी की तर्ज पर 'गैंगर' भी अपने गांव या अपने आसपास के गांवों से या अपनी ही जाति या अपने समुदाय के लोगों को इकट्ठा करते थे। 'इससे भर्ती में आसानी भी होती थी और पेशगी लेकर मुकर जाने की आशंका भी नहीं रहती थी।'[43] कार्यस्थल पर पहुंचने के बाद मजदूरों पर 'गैंगर' का हुक्म चलता था। वही मजदूरों के नाम पर तनख्वाह लेते थे और मजदूरों को भुगतान करने से पहले उसमें से एक हिस्सा अपने कमीशन के रूप में काट लेते थे। ब्रिटिश ठेकेदारों ने अपने कार्यस्थलों पर जातिगत पूर्वाग्रहों को पहले की तरह ही चलने दिया। उन्होंने न केवल इन पूर्वाग्रहों पर सवाल नहीं उठाया, बल्कि अपने नियंत्रण को मजबूती देने के लिए उसका एक औजार के तौर पर इस्तेमाल भी किया। एक ठेकेदार ने बताया है कि कुशल मजदूर भी 'असंख्य और निहायत बेतुके पूर्वाग्रहों' के शिकार होते थे। वे अलग-अलग जातियों में बंटे होते थे तथा एक जाति के मजदूर एक ही तरह का काम करते थे और दूसरी जाति के मजदूरों के काम में हाथ भी नहीं लगाते थे।[44] अकुशल मजदूर भारतीय समाज के बिल्कुल निचले तबकों से आते थे व जिंदा रहने के लिए कोई भी काम करने को तैयार हो जाते थे।

भट्ठों में बंधुआ मजदूरी

मजदूरों पर अंकुश लगाने और अधिशेष श्रम निचोड़ने के मामले में अंग्रेज कई कदम आगे निकल गए थे। औपनिवेशिक शासन को मजदूरों की जरूरत थी - बेहिसाब मजदूरों की। इसके लिए उन्होंने ताकत और धोखे का रास्ता अपनाया। अंग्रेजों को हर मौसम में जितने मजदूरों की जरूरत थी, वे भारत के परंपरागत ईंट उत्पादकों में से नहीं मिल सकते थे।[45] वैसे भी, अगर कुम्हारों को काम पर लगाया जाता तो उन्हें भी नए सिरे से काम सीखना पड़ता क्योंकि अब हर काम अलग-अलग लोगों को सौंपा जाने लगा था। इस समस्या से निपटने के लिए अंग्रेजों ने अपने मातहत 'मकदूमों' का एक और तबका पैदा किया। उन्हें गांव-गांव जाकर भट्ठों और दूसरे निर्माण

40 ibid. pp. 120. (Quoted from Graham, ICE MS no.1161) The note of the author adds: C.B. Ker and R.W. Graham, who had served as CEs of the Great Indian Peninsular Railway (GIPR), became contractors' agents. (pp. 82). A late nineteenth century description can be found in Spring, Technical papers No.71, p54. ICEMS No.1161, R.W. Graham, 'Description of the Bhore and Thule Ghar Inclines', GIPR, 1866

41 Ian J. Kerr (1995) writes, "…The gangers, variously styled muccadum, sardar or maistry, were the ones who made advances to workers in order to persuade them to come to the work sites. The same people usually commanded the gangs at the work sites, although the engineers sometimes tried to enhance their direct control of work by placing men of their choice in charge." pp. 119

42 Ian J. Kerr (1995) writes, "Brunton refers to men working in groups under self-elected muccadums or gangers who made all arrangements for work, who received and divided the groups' earnings, and to whom each worker paid a percentage of his wages." (Brunton, MPICE, 22 (1862–3), p. 457). John Brunton was the CE of the Sind, Punjab and Delhi Railway (SP&DR). The author quotes from John Brunton's Book, Being the Memories of John Brunton, Engineer, from a manuscript in his own hand written for his grandchildren and now printed. With an Introduction by J. H. Clapham. Cambridge. Cambridge University Press. 1939.

43 ibid. pp. 119

44 Ian J. Kerr, (1995) pp. 115 Quoted from IOL&R, Eur MSS. C. 401, Two letters, dated 1851, from Henry Fowler (1821–54), Fowler to Leather dated 2 May 1851, Bombay.

45 Ian J. Kerr (1995) provides this information. 'Unusual exertions', using Berkley's phrase, were needed to obtain the requisite labour. One of Berkley's assistants tells us what these exertions involved in the case of the Bhore Ghat, part of the Great Indian Peninsular Railway: "There is no local labour and therefore the difficulty of collecting and organising the workmen had to be commenced almost afresh after each rainy season. This was effected by sending numbers of maistrys and muccadums corresponding to foremen and gangers to the different towns and villages in a circuit of 200 or 300 miles supplied with money to enable them to advance small sums merely sufficient to keep the men on the road. The labourers thus collected were taken to the nearest railway station on the Concan or Deccan where their fares were paid for them to Khandalla or Campoolee at the top or the foot of the Ghat as the case might be." Quoted from Graham, ICE MS No. 1161) pp. 120

कार्यों के लिए मजदूर इकट्ठा करने का काम सौंपा गया। मकदूमों को अफसरों की तरफ से नकद रकम दी गई ताकि वे संभावित मजदूरों को कर्ज/पेशगी देकर उन्हें काम पर आने के लिए राजी कर लें। यहां हमें संजीदगी से यह सवाल उठाना चाहिए कि क्या यह ईंट भट्ठों में बंधुआ मजदूरी की शुरुआत तो नहीं थी। हमारे पास यह साबित करने के लिए स्पष्ट साक्ष्य नहीं हैं कि इससे पहले भारत में भट्ठे उजरती मूजदूरों के सहारे पेशेवर आधार पर चल रहे थे या नहीं। निश्चय ही, भारत में घरेलू बंधुआ मजदूरी प्रचलन में रही होगी। इसमें कोई शक नहीं कि मुखदमों को पेशगी के बदले मजदूरों को लुभाने-ललचाने के एक निश्चित मिशन पर रवाना किया गया था। मजदूरों को पेशगी के बदले काम करना पड़ता था, इसलिए उनका बंधुआ मजदूरी की स्थिति में पहुंच जाना स्वाभाविक था। उन्हें इस तरह की बंधुआगिरी से बचने का कोई रास्ता भी नहीं था। इसके अलावा, ऐसे कानूनों की वजह से भी अंग्रेजों के हौसले बुलंद थे जो बंधुआ मजदूरी या पेशगी के बदले मजदूरी और ठेका मजदूरी को कानूनी मान्यता देते थे। मजदूरों द्वारा अनुबंध का उल्लंघन (1859 का 13) कानून यही सुनिश्चित करने के लिए पारित किया गया था कि मजदूर, कामगार और सेवक अपनी जिम्मेदारियों से न भागें। इससे मालिकों को इस बात का खुला प्रोत्साहन मिला कि वे मजदूरों को कैद का डर दिखाकर बंधुआ बनाए रखें। यह कानून 1843 के ऐक्ट द्वारा भारत से दास प्रथा को खत्म करने वाले कानून के बाद पारित किया गया था। इस तरह नए कानून में दासों की मुक्त कराने की बात तो कही गई, लेकिन बंधुआ मजदूरों और ठेका मजदूरों की मुक्ति को नजरअंदाज कर दिया गया (मंजरी डिंगवानी, 1985)।

सवाल यह उठता है कि कैसे मजदूर इस तरह फुसलावे के लिए उपलब्ध हुए? ये मजदूर कहां से आते थे? अंग्रेज न केवल श्रम बाजार के मांग पक्ष को मजबूत कर रहे थे, बल्कि ग्रामीण इलाकों से बड़ी संख्या में कुशल व अकुशल मजदूरों को कार्यस्थलों की तरफ खींचकर आपूर्ति पक्ष को भी नियंत्रित कर रहे थे।

ग्रामीण गरीबी और आपूर्ति प्रबंधन

विभिन्न शोध अध्ययनों और औपनिवेशिक रिपोर्टों से यह साफ हो चुका है कि उस जमाने में गांवों में भयानक गरीबी और असुरक्षा व्याप्त थी। गंगा के मैदानों में ग्रामीण आबादी औपनिवेशिक शासन के तहत पिस रही थी (एलिजाबेथ व्हाइटकॉम 1972; एलिजाबेथ व्हाइटकॉम 1993; जॉर्जियो शानी, 2006; ज्ञान प्रकाश 1990; कृष्ण जी कर्माकर 2015; टॉमस आर मेटकॉफ 1979; विनय कृष्ण गिडवानी, 1999)। ईस्ट इंडिया कंपनी ने काश्तकारों से कर वसूल करने के लिए जो पट्टेदारी व्यवस्था लागू की थी, उसे ग्रामीण गरीबों की इस दरिद्रता का सबसे मुख्य कारण बताया जाता है। औपनिवेशिक सरकार ने बंगाल प्रेसीडेंसी में 1793 के स्थाई बंदोबस्त से शुरू करके भूस्वामित्व की तीन व्यवस्थाएं लागू की थीं : जमींदार-केंद्रित व्यवस्था (जिसे जमींदारी या मालगुजारी व्यवस्था भी कहा जाता है), बंगाल; बॉम्बे और मद्रास में काश्तकार आधारित रैयतवाड़ी व्यवस्था तथा उत्तर-पश्चिमी प्रांतों में ग्राम आधारित महालवाड़ी व्यवस्था। भूमि सुधार इसलिए लागू किए गए ताकि औपनिवेशिक सरकार ज्यादा से ज्यादा लगान वसूल कर सके। शुरू में लगान उपज का 90 प्रतिशत तक होता था, मगर बाद में पूरे भारत में इसे 50 प्रतिशत के आसपास सीमित कर दिया गया था (रोमेश दत्त, 1908)।[46] औपनिवेशिक सरकार के लिए लगान आमदनी का एक मुख्य स्रोत था। यह इस बात से समझा जा सकता है कि 1841 में ब्रिटिश सरकार की कुल कमाई का 60 प्रतिशत केवल लगान से आता था (अभिजीत बनर्जी एवं लक्ष्मी अय्यर, 2005)। भारत में वसूल किए जाने वाले इस लगान का एक तिहाई हिस्सा देश के बाहर भेज दिया जाता था।[47] ब्रिटिश राज्य की ऐसी कृषि नीतियों की वजह से बड़ी तादाद में लोग जमीन से कटते चले गए। वे सूदखोरों और महाजनों के कर्ज तले दबने लगे। लोगों की क्रय शक्ति खत्म होने लगी। लाखों लोग अकाल के निवाले बन गए। निर्यातोन्मुखी नगदी फसलों को बढ़ावा देने के लिए विशाल सिंचाई परियोजनाएं शुरू की गईं। इस उपज की ढुलाई के लिए रेल नेटवर्क तैयार किया गया। इन बदलावों से उपजाऊ इलाकों में बड़े पैमाने पर पारिस्थितिकीय असंतुलन पैदा हुआ जिसके कारण कृषि उत्पादों की कीमतों में गिरावट आई। खेत दलदल में बदल गए, कई जगह मलेरिया की बीमारी फैल गई और कृषि आश्रित ग्रामीण जनता के जीवन स्तर में गिरावट आई (एलिजाबेथ व्हाइटकॉम, 1972, 1986, 1993)। ज्ञान प्रकाश (1999) ने इसका अध्ययन किया है कि उन्नीसवीं सदी के बिहार में खेती के बढ़ते व्यवसायीकरण ने भूमि-संबंधों को किस

46 Romesh Dutt (1908) observes: "In northern India they fixed their demand of rent at 83 per cent of the rental, then at 75 per cent, then at 66 per cent. But even this was found to be impracticable, and at last, in 1855, they limited the state demand to 50 per cent of the rental. And this rule of limiting the land revenue to one-half of the rental was extended to Southern India in 1864. An income tax of 50 per cent on the profits of cultivation is a heavier assessment than is known in any other country under a civilised government." pp. x Preface.

47 Romesh Dutt (1908) observes, "The total land revenue of Indian was 17½ millions in 1900–1. The total Home Charges in the same year came to 17 millions. It will be seen, therefore, that an amount equivalent to all that is raised from the soil, in all the Provinces of India, is actually remitted out of the country as Home Charges." pp. xv Preface

तरह बदल दिया था। उदाहरण के लिए, 'कमिया' भी कई ऐसी प्रथाओं के शिकार होने लगे जिनके चलते वे ऋणदास की हैसियत में पहुंच गये थे। तमाम वर्गों के किसानों पर कर्जे तेजी से बढ़ने लगे। सरकारी नीतियों से पैदा हुई दरिद्रता सिर्फ खेतिहर आबादी तक ही सीमित नहीं थी। औद्योगिक और व्यापार नीति ने भारत के कपड़ा और क्राफ्ट आधारित उद्योगों को तहस-नहस कर दिया था। भारत ब्रिटिश फैक्ट्रियों के लिए कच्चे माल का स्रोत और ब्रिटेन में बनने वाले तैयार माल का बाजार बनकर रह गया था। इसके चलते करोड़ों लोग बेरोजगार हुए (ए रहमान, 1981)। शुल्क की दरों में इस तरह फेरबदल किए गए जिससे ब्रिटेन से आने वाले तैयार माल के आयात में आसानी हो और भारतीय उद्योगों में बनने वाले सामान की मांग गिरती जाए (रोमेश दत्त, 1908)। इन सारी नीतियों का नतीजा यह था कि असंख्य लोग किसी भी तरह का और किन्हीं भी शर्तों पर काम करने के लिए तैयार हो चुके थे।

बीसवीं सदी की शुरुआत में उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले से भट्ठों के लिए मजदूर किस तरह इकट्ठा किए जाते थे, इसका एक बढ़िया ब्यौरा जॉन लुकासन (2008) ने दिया है। उन्होंने बताया है कि यहां आम ग्रामीणों के पास विरले ही अपनी जमीन होती थी। सभी बंटाई पर जमीन लेकर खेती करते थे। ज्यादातर पट्टेदारों के पास दो एकड़ से भी कम जमीन होती थी। गौरतलब है कि प्रतापगढ़ को तुलनात्मक रूप से संपन्न और उन्नतिशील जिलों में बताया जाता था। लुकासन बताते हैं, "... यहां के पट्टेदारों की संपन्नता का एक सबूत आम तौर पर यह बताया जाता है कि भले ही उनके पास दो जून की रोटी का भी भरोसा नहीं था और वे यौन अंकुशों को कतई मानते नहीं थे, तो भी वे बुरे सालों में भी लगान चुका ही देते थे। ....निचली जातियों के सभी पट्टेदार खेती के अलावा अन्य कामों में मजदूरी कर अपनी आमदनी बढ़ा लेते थे। वे काम-धंधे की तलाश में सड़कों, रेल की पटरियों और दूसरे निर्माण कार्यों में दूर-दूर तक जाकर मजदूरी करते थे। वे अपने बच्चों और औरतों को घर पर छोड़कर चले जाते थे। ऊँची जातियों के लोग अपने अहंकार की वजह से इस तरह के कामों से दूर रहते थे, मगर बहुत सारे ब्राम्हणों और राजपूतों को फौज और पुलिस में नौकरी मिल जाती थी। उन्हें भी दूर-दूर के इलाकों में तैनात कर दिया जाता था। दूर-दूर जाकर नौकरियां और मजदूरी करने से लोगों के संसाधनों और आमदनी में इजाफा तो होता था, हालांकि यह कहना मुश्किल है कि इस तरह आने वाली पैसों से लोगों को कितना फायदा होता था।[48] स्थानीय कृषि मजदूरी के मुकाबले इस तरह के मौसमी कामों में ज्यादा कमाई हो जाती थी। खेती में वैसे भी लोगों को वस्तु के रूप में मेहनताना मिलता था। जुताई और खाद डालने के बदले मजदूरों को रोजाना डेढ़ सेर और कुएं के पानी से सिंचाई करने के लिए रोजाना दो सेर अनाज मिलता था। 1872 से 1900 के बीच एक सक्षम खेतिहर मजदूर की औसत मासिक मजदूरी तीन रुपये के आसपास बैठती थी।[49] भूमिहीनता, बेगारी, मौसमी उतार-चढ़ाव और कम मजदूरी की वजह से आबादी का बहुत बड़ा तबका, खास तौर पर निचली जातियों के ज्यादातर लोग भट्ठों में काम करने के लिए आसानी से मिल उपलब्ध था।

अब तक की चर्चा का सार-संकलन करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :

(1) भारत में ईंटों के उत्पादन (पथाई और जलाई) की तकनीक हड़प्पा और सिंधु घाटी सभ्यता के जमाने से मौजूद थी; (2) हड़प्पा सभ्यता के बाद मुगल काल तक निर्माण सामग्री के तौर पर ईंटों के इस्तेमाल में भारी गिरावट आई थी, सिवाय पूर्वी भारत के; (3) फिर भी, ईंटों को जलाकर तैयार करने की तकनीक प्रचलन में थी और अभी भी एक खास जाति के लोग ग्रामों में छोटे पैमाने पर ईंटें बना रहे थे, (4) हालात तब बदले जब अंग्रेजों को रेलवे, सिंचाई, छावनियों, बंगलों आदि के निर्माण के लिए बड़ी तादाद में ईंटों की जरूरत पैदा हुई; (5) भारतीय निर्माण क्षमताओं को बेहतर बनाने में अंग्रेज सरकार की कोई दिलचस्पी नहीं थी, इसलिए उन्होंने ईंट उत्पादन की तकनीक को ही बदल दिया और एक व्यवस्थित, औद्योगिक स्तर पर उत्पादन की व्यवस्था लागू की; (6) इसके लिए मजदूरों को इकट्ठा करने, उनकी तैनाती और उत्पादन की व्यवस्था को दुरुस्त करने के लिए भारी बदलावों की जरूरत थी। अब ये बदलाव हमारे ईंट भट्ठा उद्योग की स्वाभाविक विशेषता बन चुके हैं। जैसे, ठेकेदारों के माध्यम से पेशगी देकर मजदूरों को लाना, कर्ज उतारने के लिए मजदूरों का भट्ठों में काम करना, पीस रेट पर भुगतान करना, काम और भुगतान पर ठेकेदारों का नियंत्रण, कामों का जाति के अनुसार सख्त बंटवारा, आदि; (7) दूसरी तरफ औपनिवेशिक कराधान नीतियों, कृषि सुधारों, व्यापारिक और औद्योगिक नीतियों तथा सरकारी आय को भारत से बाहर भेज देने तथा अन्य राजकोषीय नीतियों की वजह से ऐसे हालात पैदा हुए जहां गरीब ग्रामीण और शहरी लोगों को ईंट भट्ठों में काम करने के लिए आसानी से तैयार किया जा सकता था।

अब तक की चर्चा से एक महत्वपूर्ण सवाल उठता है। मजदूरों को इकट्ठा करने और उत्पादन की विभेदीकृत व्यवस्था कहां से आई

48 Jan Lucassen (2008) pp. 555–556. Quoted from Neville, Pratapgarh: A gazetteer, pp. 49–50

49 ibid. pp. 556

थी? इस सवाल का जवाब ढूंढने के लिए हमें फिर इतिहास में जाना होगा। क्या यह व्यवस्था ब्रिटेन से आई थी या यूरोप की देन थी? उस समय ब्रिटेन तथा अन्य यूरोपीय देशों में ईंट उत्पादन की व्यवस्था कैसी थी? क्या ईंट उत्पादन में किए गए नए प्रयोग ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे उपनिवेशों से लिए गए थे?

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के ब्रिटेन में ईंटों का उत्पादन

जॉन लुकासन (2008) के दिलचस्प लेख में 1700-1900 ईस्वी के बीच यूरोप और 1800-2000 ईस्वी के बीच भारत में ईंट उद्योग और श्रमिकों की स्थिति की तुलना की गई है। यह अध्ययन इस मान्यता पर आधारित है कि हाथों से ईंट बनाने का व्यवसाय एक ग्रामीण उद्योग था जिसमें मशीनीकरण का स्तर यूरोप और भारत दोनों जगह बहुत ही साधारण था। साथ ही यह भी बताया गया है कि यूरोप और भारत, दोनों समाजों में ऊंच-नीच और असमानता भी बहुत गहरी थी। तुलना के लिए चुनी गई अवधि में ईंट भट्ठों की दो समान विशेषताएं इस प्रकार हैं : दोनों जगह ईंटों का उत्पादन सीजन के हिसाब से होता था और उससे 'कार्य प्रक्रिया के लिए महत्वपूर्ण परिणाम पड़ते थे' तथा मजदूर एक जगह से दूसरी जगह जाते रहते थे। लेखक ने दोनों जगहों के लिए अलग-अलग काल अवधि- यूरोप के लिए 1900 ईस्वी तक और भारत के लिए 2000 ईस्वी तक - को क्यों चुना है, इस पर रोशनी डालते हुए लेखक का कहना है कि उन्नीसवीं सदी की समाप्ति के बाद कई ऐसे आविष्कार किए गए जिनकी वजह से ईंट उत्पादन में मौसमी उतार-चढ़ाव कम होते चले गए, मसलन ऐसे भट्ठे बनाए गए जिनमें लगातार जलाई की जा सके, ईंटों को कृत्रिम ढंग से सुखाने के उपकरण तैयार किए गए, ईंटों की पथाई के लिए मशीनें तैयार की गईं। इसका नतीजा यह हुआ कि ईंट निर्माण एक बारहमासी प्रक्रिया बन गया और उत्पादकता बढ़ने की वजह से बहुत सारे मजदूरों को भट्ठे के आसपास ही आकर रहना पड़ता था। लुकासन का कहना है कि कुछ अपवादों के अलावा, "यूरोप से एक सदी बाद अभी भी भारत उस अवस्था तक नहीं पहुंच पाया है, हालांकि यहां 50 लाख से ज्यादा ईंट मजदूर काम करते हैं" (जॉन लुकासन 2008, पृष्ठ 518)।

यूरोप में शहरों के प्रसार और बैरकों, कैदखानों, सड़कों, नहरों और रेलवे लाइनों के निर्माण जैसी विशाल सार्वजनिक परियोजनाओं के चलते ईंटों की भारी मांग पैदा हुई थी। 1666 में लंदन में हुए भीषण अग्निकांड से ईंट उद्योग को एक बहुत बड़ा उभार मिला क्योंकि संसद ने लकड़ी की इमारतों के निर्माण पर पाबंदी लगा दी और इससे ईंटों की बेहिसाब मांग पैदा हुई। अठारहवीं सदी के नहर निर्माण और उन्नीसवीं सदी में रेलवे के निर्माण व विस्तार के लिए भी बढ़िया स्तर की ईंटों की बड़ी मात्र में जरूरत पैदा हुई। लिहाजा, इसी दौर में ईंट निर्माण के क्षेत्र में बहुत सारे नए प्रयोग किए गए। 1840 के दशक में 25.39 प्रतिशत ईंट उत्पादन केवल रेलवे के निर्माण के लिए समर्पित था (जोनाथन डिक्स, 2015)। जॉन लुकासन ने बताया है कि क्लैम्प भट्ठों में ईंटों का औद्योगिक ढंग से उत्पादन किया जाता था, जहां ईंटों को ईंधन में मिलाकर उनके चट्ठे लगा दिये जाते थे और पकी हुई ईंटों से उन्हें चारों तरफ से बंद कर दिया जाता था। जलाई के बाद पूरे क्लैम्प को तोड़ दिया जाता था क्योंकि भट्ठे की अपनी कोई स्वतंत्र संरचना नहीं होती थी। क्लैम्प भट्ठों की उत्पादन क्षमता कुछ हजार से लेकर तीन लाख ईंटों तक होती थी। एक ही जगह कई क्लैम्प एक साथ जलाए जाते थे जिसके लिए वहां हजारों मजदूरों की जरूरत पड़ती थी। अर्धकुशल मजदूरों की इतनी भारी संख्या में अचानक पैदा हुई मांग को पूरा करने के लिए प्रवासी मजदूरों को काम पर रखा जाने लगा। इसके लिए सिर्फ स्थानीय मजदूर काफी नहीं थे। प्रवासी मजदूर ईंट उत्पादन के सीजन में दूसरे काम-धंधों को छोड़कर आने के लिए भी तैयार रहते थे। आम तौर पर उनके पास ज्यादा खेती-बाड़ी भी नहीं होती थी, जिसकी वजह से वे अपनी थोड़ी-बहुत जमीन को आसानी से अपने परिवार के सदस्यों के जिम्मे सौंप कर आ सकते थे (जॉन लुकासन 2008, पृष्ठ 520)।

इसके बाद जॉन लुकासन अठारहवीं सदी के इटली व हॉलैंड तथा उन्नीसवीं सदी के इंग्लैंड का भी हवाला देते हैं। वह बताते हैं कि इटली में भूस्वामियों से ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठानों में निवेश की सबसे ज्यादा उम्मीद की जाती थी। वहां मजदूरों के पास बारह महीने काम नहीं होता था, इसलिए मजदूर स्थानीय स्तर पर ही मिल जाते थे। फ्लोरेन्टाइन के साक्ष्यों के आधार पर ऐसा लगता है कि उस समय भट्ठों का काम बहुत महारत वाला बन चुका था। मिट्टी की खुदाई से लेकर गारा तैयार करने और पथाई तक सारा काम पथेरे और उनके परिवार के लोग ही करते थे। उन्हें प्रति एक हजार कच्ची ईंटों के हिसाब से भुगतान किया जाता था। इसके बाद जलैये आते थे जो कच्ची ईंटों को भट्ठे में पकाने के लिए ले जाते थे। अंत में पकी हुई ईंटों को भट्ठे से निकालकर निर्माण स्थल तक ले जाया जाता था। यह काम अलग गिल्ड यानि संगठित समूह के लोगो को दिया जाता था (जॉन लुकासन 2008, पृष्ठ 525-257)।

सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के हॉलैंड में भी इटली के जैसा ही कुछ घटने लगा था। मगर अब मजदूर ज्यादा दिखाई पड़ने लगे थे। हॉलैंड में भी ईंटों का उत्पादन एक ग्रामीण उद्योग था, मगर ये भट्ठे शहरों के आसपास, नदियों के किनारे होते थे। स्थानीय परिवारों द्वारा मजदूरी एक सामान्य बात थी। आऊद रिन नदी के किनारे काम मौसमी आधार पर चलता था, मगर कुछ मजदूरों को गैर मौसमी समय में

भी मिट्टी की खुदाई और उसकी ढुलाई जैसे काम मिले रहते थे (जॉन लुकासन 2008, पृष्ठ 527)।

इंग्लैंड तीसरा देश है जिसके बारे में जॉन लुकासन ने महत्वपूर्ण जानकारियां दी हैं, खास तौर पर उन्नीसवीं सदी के शुरूआती दौर के बारे में। उन्होंने बताया है कि उस समय वहां ईंट उद्योग पर तीन इलाकों का दबदबा था : स्टैफोर्डशायर (पास में सटे डर्बीशायर और लीसेस्टरशायर भी), नॉटिंघम और सदर्न लंकाशायर तथा लंदन के आसपास का इलाका। उन्नीसवीं सदी के हॉलैंड के वॉर्डन और उत्रेख्त तथा गेल्डरलैंड जैसे दूसरे फ्रेंचभाषी नदी-तटीय उत्पादन इलाकों की तरह इंग्लैंड में भी कुछ इलाकों में पूरे परिवार (जिसमें बच्चे भी शामिल होते थे) द्वारा मजदूरी एक सामान्य बात थी, हालांकि सभी जगह ऐसा नहीं था (जॉन लुकासन 2008, पृष्ठ 529)।

यह थोड़ी अचंभे की बात लगती है कि जॉन लुकासन ने इंग्लैंड तथा अन्य यूरोपीय देशों के ईंट उत्पादन के साथ भारत के ईंट उत्पादन की तुलना करने के लिए उन्नीसवीं सदी के बजाए बीसवीं सदी को क्यों चुना है। यह एक अलग मसला है कि बीसवीं सदी में भी भारत मशीनीकरण के मामले में पीछे क्यों रहा। उन्हें यह भी देखना चाहिए था कि एक ही समय में भारत और ग्रेट ब्रिटेन व यूरोप के ईंट उत्पादन में काफी समानताएं थीं, खास तौर पर उत्पादन की व्यवस्था के लिहाज से।

जाहिर है कि जॉन लुकासन ने एक यूरोपकेंद्रित नजरिया अपनाया है। अलग-अलग समय पर ईंट निर्माण की प्रक्रियाओं की तुलना से लेकर भारत में परंपरागत ईंट निर्माण के स्थान पर यूरोपीय किस्म की उत्पादन पद्धतियों की तरफ विचलन तक भी झलकता है। उन्होंने अपनी किताब में इस बात को माना भी है।

उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन के ईंट उत्पादन पर लघु इकाईयों का दबदबा था। ज्यादातर क्लैम्प भट्ठे हुआ करते थे। इन भट्ठों का आकार इस पर निर्भर करता था कि घोड़ागाड़ी से एक दिन में कितनी दूर तक ईंटों की ढुलाई हो सकती थी। चुनांचे यह भट्ठे ऐसे इलाकों में ही ज्यादा दिखाई देते थे जहां ईंटों के लिए अच्छी मिट्टी हो और आबादी भी ठीक-ठाक हो (एस डब्ल्यू डेवीज़, 1971; कैथलीन एन वॉट, 1990)। कैथलीन एन वॉट ने भट्ठे में कामों का इस तरह बंटवारा बताया है : (1) पथेरे, जो परंपरागत रूप से भट्ठों में सबसे कुशल मजदूर माने जाते थे क्योंकि हाथों से पथई के लिए सटीकता, रफ्तार और हाथों में ताकत की जरूरत पड़ती थी ताकि वे रोजाना 12-13 घंटे तक काम कर सकें; (2) गारा तैयार करने वाले, जिनके पास बिलकुल सही गारा तैयार करने की समझ होनी चाहिए; (3) पग ब्वाय जो ईंटों की ढुलाई करते और चट्ठे लगाते थे (आमतौर पर बच्चे); (4) सॉयलर, जो गारा में राख की मात्र को तय करते थे; (5) वॉक फ्लेटर ईंट के लायक मात्र में गारा पथेरों तक लेकर आता था; (6) जलैये; (7) कच्ची ईंटों की ढुलाई करने वाले। इस तरह हाथों से ईंट बनाने की यह प्रक्रिया तकनीकी तौर पर पथेरों की अंतर्निहित रूप से श्रेष्ठ क्षमता की बजाए अलग-अलग कौशलों की परस्पर निर्भरता पर आश्रित होती थी। औपनिवेशिक सरकार ने यही श्रम विभाजन भारत के ईंट भट्ठों में भी लागू कर दिया।

मजदूरों को जुटाने और काम के व्यवस्थापन - खास तौर पर गैंग वर्क, बाल मजदूरी और पीस रेट पर मजदूरी - में ब्रिटेन के साथ एक जबर्दस्त समानता दिखाई देती थी। कैथलीन एन वॉट ने कहा है कि "ईंट निर्माण कार्यों में पथेरों का महत्व गैंग लीडर के तौर पर उसकी सामाजिक रूप से केंद्रीय हैसियत पर सबसे ज्यादा निर्भर करता था। ठेकेदारी व्यवस्था ने काम पर नियंत्रण और हुनर के आधार पर संबंधों का एक ऐसा जाल रच दिया था जो पूरे उद्योग में फैला था। प्रमुख पथेरे दूसरे पथेरों को लेकर आते थे और उन्हें प्रति हजार ईंटों की दर से भुगतान करते थे। इसके बाद वे अपने समूह में अन्य लोगों को चुनते थे। इस प्रकार, वे गैंग में होने वाले सभी दूसरे कामों पर भी नजर रखते थे और तय करते थे कि ईंट बनाने का कौशल हासिल करने का अवसर किसको मिलेगा। इस ताकत के दम पर वे अपनी हैसियत को बरकरार रखते थे और अपने मातहत होने वाले कामों में एक ऊंच-नीच का क्रम बनाए रखते थे। यह बात गैंग मेम्बर्स को मिलने वाली मजदूरी के वितरण में भी दिखाई देती थी। उदाहरण के लिए 1866 में गैंग लीडर को जो पैसा मिलता था, उसमें से वह पग ब्वाय, पुशर आउट और बरो लोडर को अलग-अलग मात्र में अदा करता था (बीपीपी चिल्ड्रेन्स एम्प्लॉयमेंट कमीशन, 1966, पृष्ठ 138 और 140)। पथेरे ही काम की रफ्तार और इस बात को भी तय करते थे कि पूरा गैंग एक दिन में कितने घंटे काम करेगा। एक प्रमुख पथेरे का कहना था : "दिन के मजदूरों की पाली सुबह 6 बजे से शाम 6 बजे तक होती है, मगर पथेरे को हजार के हिसाब से भुगतान किया जाता है...। इसलिए वे काम के घंटे अपने हिसाब से भी तय कर सकते हैं। मैंने अकसर उन्हें गर्मियों में भी सुबह 4 बजे से रात के 9 बजे तक काम करते देखा है" (बीपीपी चिल्ड्रेन एम्प्लॉयमेंट कमीशन 1866, पृष्ठ 137; बीपीपी फैक्ट्री ऐण्ड वर्कशाप ऐक्ट 1876, पृष्ठ 366) (कैथलीन ऐन वॉट 1990, पृष्ठ 39-40)।

काम को तर्कशील ढंग से व्यवस्थित करना, मजदूरों की हर क्रिया पर नजर रखते हुए उत्पादकता अधिकतम बढ़ाना, उनकी रफ्तार, औजारों

की जगह, लोगों के बंटवारे, आदि को निर्धारित करना भी महत्वपूर्ण बदलाव थे (एडवर्ड डॉब्सन, 1882)। यह समय और गति आधारित अध्ययनों की रोशनी में हेनरी फोर्ड द्वारा कार्यस्थल को यांत्रिक रूप देने से काफी पहले की बात है। एडवर्ड डॉब्सन (1982) ने 'ए रूडिमेंटरी ट्रेटाइज़ ऑन मेन्युफैक्चर ऑफ ब्रिक ऐण्ड टाइल्सः कंटेनिंग एन आउटलाइन ऑफ दी प्रिंसिपल ऑफ ब्रिक मेंकिंग' (1882) में लंदन में प्रचलित ईंट निर्माण प्रक्रिया के अलग-अलग चरणों का ब्यौरा दिया है। "सबसे पहले तो ईंट बनाने के लिए मिट्टी खोदी जाती है और उसे वहां लाया जाता है जहां ईंटों की पथाई होगी। मिट्टी और चॉक की चक्कियां भी पास में ही रखी जाती हैं ताकि काम में किसी तरह का व्यवधान न पड़े। ढलान पर बने सांचों या पट्टियों के जरिए गारा को पथेरों के पास पहुंचाया जाता है। गारा के पास और पथेरे के स्टूल के ठीक पीछे पगमिल होता है और स्टील के ठीक सामने हेक ग्राउंड होता है जो क्लैम्प की तरफ हल्की सी ढलान वाला होता है। क्लैम्प यहां से दूर होता है। स्थानीय हालात के हिसाब से इस बंदोबस्त में काफी फेरबदल भी कर लिया जाता है।"[50] औजारों को बेहद तर्कसंगत ढंग से व्यवस्थित करने के अलावा उत्पादन की प्रत्येक प्रक्रिया को भी एक तर्कसंगत रूप दिया गया ताकि मानव संसाधनों का अधिकतम दोहन किया जा सके और समय व सामग्री की कम से कम बर्बादी हो। इसी का एक उदाहरण देने के लिए उन्होंने लंदन में ईंटों को पाथने और सुखाने की प्रक्रिया के बारे में बताया है :

> 'पथाई शुरू करने से पहले पथेरे को मोल्डिंग स्टूल दिया जाता है जिस पर सूखी मिट्टी के दो ढेर होते हैं। इसके अलावा पानी का एक टब होता है जिसमें वह स्ट्राइक, स्टॉक बोर्ड और ईंट का सांचा रखता है। इसके अलावा वह तीन पटरे रखता है। सब कुछ काम के लिए तैयार होता है और फीडर स्टूल पर तैयार गारा लाकर रख देता है। वह पगमिल से मोडिंग स्टूल पर गारा लाता है। यहां एक महिला स्टूल पर सूखी रेत छिड़कती है और गारा को अच्छी तरह गूंथती है। इसके बाद वह उसमें से ईंट के आकार के अलग-अलग ढेर बनाती जाती है और उसे अपनी बाईं ओर पथेरे की तरफ बढ़ाती जाती है। पथेरा स्टॉक बोर्ड पर रेत छिड़ककर और अपने बायीं तरफ रखी गारे की लोई को सांचे में डालकर उसे स्टॉक बोर्ड पर रखता है और ऊपर से उसे अच्छी तरह दबाता है ताकि सांचे के कोनों में भी मिट्टी पूरी तरह भर जाए। इसके बाद वह गीले स्ट्राइक से फालतू गारा को हटाता है और उसे नई लोई बनाने के लिए वापस सहायक पथेरे की तरफ उछाल देता है। इसके वाद वह सांचे को उठाता है और उसे एक पटरे पर रखता है। वह ईंट को सांचे से निकालकर उसे टेकिंग ऑफ ब्वाय यानी कच्ची ईंट ले जाने वाले लड़के की तरफ खिसका देता है। इसके बाद वह अपने सांचे को फिर से रेत में घिसता है और वापस स्टॉक बोर्ड पर रख देता है। इस तरह वह गारे की दूसरी लोई से अगली ईंट बनाने की तैयारी करता है। एक पथेरा, एक सहायक पथेरी, एक फीडर, एक टेकिंग-ऑफ ब्वाय और ईंटों की ढुलाई व उनके चट्ठे बनाने वाले दो लोगों की यह टीम मिलकर सुबह 6 बजे से शाम 6 बजे तक लगभग पांच हजार ईंटें बना लेती है। कई दफा वे ज्यादा भी ईंटें बना लेते हैं'।[51]

एडवर्ड डॉबसन ने लंदन की ईंट उत्पादन में निम्नलिखित चीजें गिनाई हैं : (1) चॉक और मिट्टी की चक्की, (2) पग-मिल, (3) कुकोल्ड (4) मोल्डिंग स्टूल, (5) एक सांचा, (6) तीन सेट पैलेट, (7) तीन बेयरिंग ऑफ बैरो, (8) इनके अलावा कुछ पटरे, कुछ फावड़े, कस्सियां, बाल्टियां, छलनियां, और अन्य चीजें...। "वास्तविक निर्माण के लिए किसी इमारत की जरूरत नहीं है। फोरमैन या पथेरे अब आम तौर पर मैदान में ही रहते हैं।"[52]

पथाई और सुखाई के बाद ईंटों को क्लैम्प या भट्ठे में जलाया जाता है। क्लैम्प बर्निंग में हर ईंट के साथ उसको पकाने के लिए जरूरी ईंधन जुड़ा होता है। इसके लिए बहुत कम फासले पर ईंटों को रखकर उनके चट्ठे बनाए जाते हैं। जब चट्ठे की निचले परतों में चिंगारी छोड़ी जाती है तो उसकी गर्मी धीरे-धीरे पूरे क्लैम्प में फैल जाती है। इसके विपरीत, भट्ठा एक ऐसा चैंबर होता है जिसमें कच्ची ईंटों को बेतरतीब ढंग से एक-दूसरे के ऊपर रख दिया जाता है और उनके बीच में आग के गुजरने के लिए जगह छोड़ दी जाती है।[53] 1850 के दशक तक भट्ठों में चिमनियां नहीं हुआ करती थीं। लंदन के क्लैम्प भट्ठों में 60,000 से 1,20,000 तक ईंटें पकाई जा सकती थीं। देश के कुछ अन्य भागों में एक ही क्लैम्प में 2,50,000 तक ईंटें भी पकाई जा रही थीं (एलन कॉक्स, 1997)। ये निर्माण इकाईयां आवास एवं रेलवे लाइन निर्माण के लिए ईंटों की बढ़ती मांग को पूरा करने में सक्षम थीं। इस दौर में ईंटों का उत्पादन 100 करोड़ से 300 करोड़

50 Dobson pp. 123
51 Dobson pp. 142
52 ibid. pp. 161
53 ibid. pp. 38-39

प्रति वर्ष तक पहुंच गया था (एस डब्ल्यू डेवीज़ 1971)। इसी दौरान ईंट बनाने वालों की संख्या में भी जबर्दस्त इजाफा हुआ। 1831 में उनकी संख्या 9,423 थी, जो 1911 में बढ़कर 45,087 हो गई थी (रॉबिन लुकास, 1997)।

इस विवरण के बाद कुछ ऐसी तस्वीर सामने आती है :

(एक) यूरोप और ब्रिटेन में ईंटों के भट्ठे आम तौर पर छोटे होते थे और वे निर्माण स्थलों के आसपास होते थे, मगर ज्यादा मांग की पूर्ति के लिए क्लैम्प या भट्ठे में बड़े पैमाने पर भी उत्पादन किया जा सकता था; (दो) ईंटों का निर्माण एक उप-ठेकेदारी व्यवस्था के तहत होता था; (तीन) ज्यादातर मजदूर प्रवासी होते थे, वे गैंग या जत्थे में काम करते थे और गैंग लीडर न केवल मजदूरों को लेकर आता था, बल्कि कार्यस्थल पर उनको नियंत्रित करता था और मजदूरी का बंटवारा भी वही करता था; (चार) पूरा परिवार - पुरुष, स्त्री और उनके बच्चे - मिलकर ईंट बनाते थे; (पांच) काम की पालियां लंबी होती थी, प्रतिदिन 12 घंटे से भी ज्यादा; (छह) ईंट निर्माण की प्रक्रिया अलग-अलग क्रमबद्ध चरणों में बंटी हुई थी और उत्पादकता बढ़ाने के लिए उसे मजदूरों के अलग-अलग समूहों को सौंप दिया जाता था।

क्या आपको ये ब्योरे जाने-पहचाने से नहीं लगते? भारत में औपनिवेशिक ठेकेदार और इंजीनियर उत्पादन की तकनीक और ढांचा आयात कर रहे थे ताकि यहां ईंटों की तेजी से बढ़ती मांग को पूरा कर सकें। मगर जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, इस तकनीक और व्यवस्थापन का जस का तस इस्तेमाल नहीं किया गया। भारत में अंग्रेजों की राजकोषीय, कृषि एवं औद्योगिक नीतियों व योजनाओं ने बड़ी तादाद में लोगों को बेकार कर दिया था। इसके चलते वे भट्ठों में काम करने के लिए आसानी से उपलब्ध थे। इस लाचारी के बल पर उन्हें ऐसी कार्य संस्कृति अपनाने के लिए मजबूर कर दिया गया जो भारत के परंपरागत ईंट उत्पादकों के लिए एक नई चीज थी। भट्ठों में मजदूरों को जुटाने और उनसे काम करवाने के तरीके बहुत सावधानी से तय किए गए। इसके लिए भारत में मौजूद सामाजिक और जातिगत पूर्वाग्रहों को अस्त-व्यस्त करने की बजाय उनका भरपूर फायदा उठाया गया।

जो तकनीक आयात की गई, उसके क्रियान्वयन में ही काट-छांट नहीं की गई, बल्कि यह भी सोच-समझ कर तय किया गया कि किन चीजों को आयात किया जाएगा।

ब्रिटेन के ईंट उत्पादन में नए तकनीकी प्रयोग

जॉन लुकासन का यह कहना सही है कि अमेरिका, ब्रिटेन और यूरोप में ईंट उत्पादन विभिन्न तकनीकी और सांगठनिक बदलावों के बाद पहले जैसा नहीं रहा। नतीजतन, वहां भट्ठे 12 महीने चलने लगे और मजदूर प्रवासी नहीं रहे। जबकि भारत इक्कीसवीं सदी में भी अभी भी उस अवस्था तक नहीं पहुंचा है। इस आधार पर हम इस सवाल पर आ जाते हैं कि क्या अंग्रेजों ने वाकई उन तकनीकों को स्थानांतरित किया जो मजदूरों को बहुत कठोर, 'गंदे', शोषणपरक श्रम से छुटकारा दिला सकती थी और भारतीय ईंट उत्पादन की प्रक्रिया को एक बारहमासी रूप दे सकती थी? उपलब्ध सूचनाओं से ऐसा लगता है कि अंग्रेजों ने ईंट उत्पादन की तकनीकों का भारत में चुनिंदा ढंग से ही आयात किया था।

ब्रिटेन में 1830 के बाद गारा तैयार करने और ईंटों की पथाई के मामले में कई तरह के सुधार किए गए थे। वहां गारा तैयार करने की चक्की और पग मिल्स का भी इस्तेमाल किया जा रहा था। डॉब्सन ने ईंट उत्पादन मशीनरी को दो विशाल श्रेणियों में विभाजित किया है। उनके मुताबिक, एक वे मशीने हैं जो सूखी मिट्टी में काम करती हैं और दूसरी वे मशीनें हैं जो गीली मिट्टी में काम करती हैं यानी ऐसी मशीनें जो ईंट तैयार करती हैं और सांचों पर हल्का सा दबाव डालती हैं, जबकि दूसरी तरफ ऐसी मशीनें हैं जो काफी भारी दबाव डालती हैं और ईंटों को सांचे का बिलकुल सटीक आकार दे देती हैं।[54] आविष्कारों की यह गति 1850 तक काफी धीमी रही जब तक कि ईंटों पर लगाया गया वह कर वापस नहीं ले लिया गया जो लोगों को उत्पादन बढ़ाने से रोकता था। 1850 में ईंटों पर इस आबकारी शुल्क के खात्मे और 1852 के पेटेंट ऐक्ट के पारित होने से ईंट निर्माण मशीनरी के लिए दिए जाने वाले पेटेंट्स की संख्या में उल्लेखनीय इजाफा आया।[55] ईंटों के लिए मिट्टी की खुदाई और पथाई के सिलसिले में पेटेंट्स की बहुत सारी अर्जियां जमा कराई गईं। 1851 से 1873 के बीच ईंटों और टाइलों का आकार निर्धारित करने वाली मशीनों के लगभग 364 पेटेंट्स दर्ज किए गए[56] (कैथलीन एन वॉट 1990)। डॉब्सन ने 1861 और 1862 में ईंट निर्माण से संबंधित आविष्कारों के 14 पेंटेंट्स के पंजीकरण की सूची दी है। मिट्टी का आकार तय करने के लिए वायर कट प्रोसेस को 1860 में डिजाइन किया गया।[57] इसके बाद सेमी-ड्राई यानी अर्द्धशुष्क प्रक्रिया

54 Edward Dobson pp. 211

55 The British Parliament in August 1784 proposed the tax on bricks and tiles, and was, with modifications and clarifications, remained in force until repealed in March 1850.

56 Kathleen Ann Watt, pp. 158

आई (एफ डब्ल्यू डेवीज, 1970)। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मौसमी भट्ठों से सावधिक भट्ठों और फिर सतत भट्ठों में जलाई की दिशा में भी नये आविष्कार किए गए। 'भट्ठों के निर्माण में सबसे बड़ा सुधार ईंटों को एक साथ सुखाने और जलाने के मामले में हुआ है' जिसके लिए रिंग ओवन तकनीक विकसित की गई।[58] इसे 1858 में जर्मनी के फ्रेडरिक हॉफमैन ने पंजीकृत कराया था। ब्रिटेन में इसी का एच चेंबरलेन द्वारा पेटेंट कराया गया। हॉफमैन के भट्ठे का जो मूल डिजाइन था, वह एक घेरेदार रास्ते जैसा था जिसमें ईंटों को घेरे में लगाया जाता था और चट्ठों के ऊपर बने छेदों से ईंधन डाला जाता था। ईंटों के बीचोबीच ऊपर एक विशाल चिमनी लगी होती थी जिसके द्वारा हवा के खिंचाव से आग आगे की ओर बढ़ती जाती थी।[59] हॉफमैन किल्न के सिद्धांत के विपरीत टनल किल्न यानी सुरंग भट्ठा विकसित किया गया जिसमें जलाई जाने वाली ईंटों को रेहड़ी पर रखकर एक लंबी क्षैतिज सुरंग से गुजारा जाता था। इस तकनीक का पेटेंट जर्मनी में 1877 में ऑटो वॉक ने कराया था।[60]

साल 1900 तक आते-आते ब्रिटेन का ईंट उद्योग और ज्यादा मशीनी रूप ले चुका था हालांकि जलाई की नई पद्धतियां अभी भी धीरे-धीरे ही सही, पर बदलती जा रही थीं। तकनीकी सुधार और यांत्रिकीकरण की प्रक्रिया मोटे तौर पर जलाई से पहले की प्रक्रिया तक ही सीमित थी। इनमें कच्ची ईंटों को कृत्रिम ढंग से सुखाने और गारा तैयार करने की प्रक्रियाएं भी शामिल थीं। 1930 से 1939 के बीच ईंटों का उत्पादन 54 प्रतिशत बढ़ा और 1938 में 65 करोड़ ईंटों तक पहुंच गया था, हालांकि इस दौरान रोजगारों में केवल 60 प्रतिशत का और भट्ठों की संख्या में केवल 10 प्रतिशत का इजाफा हुआ था। विश्व युद्ध के बाद ईंटों का उत्पादन 75 करोड़ ईंट प्रतिवर्ष तक पहुंच गया था क्योंकि उस समय मकानों और इमारतों के निर्माण के लिए ईंटों की जबर्दस्त मांग पैदा हुई थी (एफ डब्ल्यू डेवीज़, 1971)। ब्रिटिश जियोलॉजिकल सर्वे द्वारा तैयार कराई गई एक ताजा रिपोर्ट (2001) में डेवीज़ की इस राय की पुष्टि होती है कि ब्रिटेन का ईंट उद्योग सुरंग भट्ठा तकनीक को अपनाता जा रहा था। रिपोर्ट में बताया गया है कि ईंटों का उत्पादन, जिसमें 1974 के बाद गिरावट आई है, अब लगभग 30 करोड़ टन प्रतिवर्ष के आसपास आकर ठहर गया है और 1979 के बाद ईंटें तैयार करने वाली कंपनियों की संख्या लगभग दो तिहाई घट चुकी है। इसका कारण यह है कि इस बीच मकानों के निर्माण में गिरावट आई है और वैकल्पिक निर्माण सामग्री में भी इजाफा हुआ है[61] (ए जे ब्लडवर्थ एवं अन्य, 2001)।

उन्नीसवीं सदी के ब्रिटेन और यूरोप के अन्य देशों में गारा तैयार करने, पथाई और ईंटों की जलाई के मामले में तकनीकी आविष्कार बहुत तेजी से किए जा रहे थे। मगर ब्रिटिश सिविल सर्वेंट और तकनीकी विशेषज्ञ अन्य देशों से नई तकनीकों का आयात करने और उनका यहां इस्तेमाल करने के लिए ज्यादा उत्साहित नहीं थे क्योंकि वे अपने देश में प्रचलित सांगठनिक व्यवस्था और मजदूरों के शोषण की पद्धतियों का पहले ही आयात कर चुके थे।[62] सन् 1848 में ब्रिटिश मिलिटरी बोर्ड ने हॉल की घोड़े और बैलों द्वारा खींची जाने वाली ईंट उत्पादक मशीनों का आयात शुरू कर दिया था जिनका इस्तेमाल गंगा की नहरों के निर्माण के लिए किया गया। इन मशीनों के इस्तेमाल से मजदूरों की जरूरत कम रह जाती थी और उनको कम मजदूरी पर रखा जा सकता था। ऐसा लगता है कि ठेकेदारों को ये मशीनें ज्यादा रास नहीं आई थीं। ठेकेदारों ने भारत में नई तकनीकों को अपनाने में जो हिचकिचाहट दिखाई, उसके लिए उन्होंने मजदूरों

57 Dobson says, "We may, however, in order to show the great vitality of the trade, quote a few titles of inventions, &c., belonging to the years 1861 and 1862. The patent list displays the strong tendency to invention for making bricks, by machinery. Thus, we have Wimball's patent for making bricks, tiles, and drain pipes; Morrell and Chamley's apparatus for making bricks, tiles, and other articles from plastic materials; Green and Wright's machinery for the manufacture of plain and ornamental bricks, slabs, tiles, and quarries; Basford's patent for constructing brick walls, and ornamenting the materials to be used for the same; Effertz' machinery for making bricks, tiles, &c.; Grimshaw's patent for compressing brick-earth and other materials; Morris and Radford's patent for the manufacture of fire bricks, blocks, &c.; Pooler's patent for making ornamental bricks, tiles, &c.; Newton's machine for making bricks; Sharp and Balmer's apparatus for the manufacture and drying of bricks; Grimshaw's patent apparatus, used in drying, pulverising, and compressing clay; Platt and Richardson's apparatus for making bricks; Foster's method of rendering bricks impervious to damp; Smith's apparatus for the manufacture of bricks, tiles, &c." pp. 195–196

58 Edward Dobson, pp. 237

59 The Hoffman's kiln is acknowledged to have revolutionised the brick and tile production industry. It allowed for a better and more uniform quality of ceramic goods; it was economical in terms of fuel consumption and labour costs; and it raised the production output spectacularly – up to 10 million bricks per factory per year.

60 Ritchie, T. (1980) in 'A History of the Tunnel Kiln and Other Kilns for Burning Bricks' writes, "Practical application of the principle of the tunnel kiln ... may first have been made in France in 1854, when Colas tunnel was used to burn bricks and tiles. Other tunnel kilns were constructed before 1878 by Otto Bock in Germany, by John Foster in England, and by M. Curot in France. …One of the first tunnel kilns in England was patented in 1869 by William Cliff." pp. 51

61 The UK brick industry is now dominated by six companies that account for almost 90 per cent of brick production. Between 25 and 30 small manufacturers account for the remaining brick production in mainland Britain. None of these smaller manufacturers produced more than 50 million bricks in 1998. Of the 8.2 million tonnes of clay consumed by the industry in 1998, almost 95 per cent was used in the manufacture of bricks. pp. 8

62 Alfred Hall of the United States invented the machine in 1845. {Kathleen Ann Watt, 1990, #10097} pp. 166

की तरफ से आनाकानी का ज्यादा हवाला दिया। मसलन यह कहा गया कि 'मजदूर बार-बार मशीनों को तोड़ देते थे जिसकी वजह से उनका इस्तेमाल छोड़ना पड़ा' (जान लुकासन 2008, पृष्ठ 549)।

बुल्स ट्रेंच किल्न : भारत में साम्राज्यवादी आविष्कार

औपनिवेशिक सरकार ईंट निर्माण प्रक्रिया में मजदूरों की ताकत को कम करने और सस्ते श्रम का दोहन करते हुए भट्ठों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए नए-नए तरीके आजमा रही थी। इन्हीं कोशिशों से बुल्स ट्रेंच किल्न तकनीक का भट्ठा सामने आया। इसका अविष्कार अंग्रेज इंजीनियर विलियम बुल ने किया था। मगर, भारतीय ईंट उद्योग से संबंधित लेखन के मुताबिक यह तकनीक ब्रिटेन से आयात नहीं की गई थी। इस तरह की पहली इकाई कलकत्ता में स्थापित की गई थी। जॉन लुकासन के मुताबिक, "1872 से 1896 के बीच अलग-अलग चरणों में और अपने दो भाइयों - जिनमें से एक भारतीय सेना में था और दूसरा बंगाल में एक निजी ठेकेदार था - के साथ मिलकर विलियम बुल ने बुल्स ट्रेंच किल्न भट्ठा विकसित किया था"। यह भारत में अंग्रेजों द्वारा किया गया वैसा ही आविष्कार था, जैसा दमदम स्थित भारतीय हथियार कारखाने में तैनात कैप्टन बर्टी क्ले ने मशरूमिंग का या 1897 में एक भयानक औजार का आविष्कार किया था जो 'मांस को बुरी तरह चीर देता था और उसमें युद्ध की कला को एक मुकम्मल रूप दे दिया था।'[63] दमदम बुलेट के इस्तेमाल के नतीजे इतने भयानक थे कि औपनिवेशिक फौज भी इसे सिर्फ 'देशी प्रजा के खिलाफ' ही इस्तेमाल करती थी। विलियम बुल ने उन्नीसवीं सदी के आखिर में भारत में ईंट निर्माण की कला को एक नया रूप दिया और पाकिस्तान, भारत, बंग्लादेश, और म्यांमार के भारतीय उपनिवेशों में इसको लागू किया। बुल्स ट्रेंच किल्न पहले से चले आ रहे क्लैम्प किल्न के मुकाबले बेहतर था। धातु की बनी इसकी चिमनी को खिसकाया जा सकता था और आग के साथ वह आगे बढ़ती जाती थी। यह एक अर्द्धसतत् भट्ठा था जिसमें ताप का नुकसान नहीं होता था और उसमें एक साथ ईंटों की भराई और निकासी चलती रहती थी। उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि औपनिवेशिक सरकार ने अपनी विभिन्न निर्माण गतिविधियों में बुल्स ट्रेंच किल्न का काफी इस्तेमाल किया था। वर्ष 1882-83 के दौरान इरिगेशन ब्रांच, नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविंसेस ऐण्ड अवध में दिए गए खर्चे के ब्योरे में एक प्रविष्टि का शीर्षक है 'मिस्टर बुल्स पेटेंट फॉर ब्रिकबर्निंग' और उसके लिए सरकारी खजाने से 10,000 रूपये जारी किए गए थे। उसी साल उत्तर-पश्चिमी प्रांत और अवध की मुख्य फैक्ट्रियों की स्थिति को दर्शाने वाले एक लेख से पता चलता है कि उस समय औपनिवेशिक सरकार यहां 10 ईंट फैक्ट्रियां चला रही थी और प्रत्येक फैक्ट्री में 132 मजदूर काम कर रहे थे। औपनिवेशिक भारत के मौजूदा भट्ठों की तुलना में बुल्स ट्रेंच किल्न यूरोप में विकसित की जा रही सतत जलाई तकनीक के संदर्भ में किए गए प्रयोगों का एक परिवर्धित, मगर एक खराब संस्करण था। उदाहरण के लिए, हॉफमैन का भट्ठा पूरे साल चालू रह सकता था क्योंकि उसकी बनावट में एक छत का भी बंदोबस्त किया गया था जिसकी वजह से बरसात में भी काम जारी रखा जा सकता था। इस साधारण बदलाव ने ईंट और टाइल उत्पादन को एक नियमित काम का रूप दे दिया था जिससे ईंट बनाने वालों के रोजगार की स्थिति और आमदनी की स्थिति में भी इजाफा हुआ। बुल ने जिस प्रकार सतत जलाई तकनीक को अपनाया था, उसकी वजह से भट्ठे सतत भट्ठे नहीं, बल्कि केवल मौसमी भट्ठे ही बनकर रह गये थे। बुल्स ट्रेंच किल्न में सतत् जलाई तकनीक को जिस तरह से अपनाया गया था, उसकी वजह से काम पूरा हो जाने पर भट्ठे को तोड़ दिया जाता था। इसके विपरीत, हॉफमैन का भट्ठा एक स्थाई साधन होता था जिसकी दीवारें और छत मजबूत होती थीं और उन्हें तोड़ने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ती थी। इसके विपरीत बुल्स तकनीक में जो परिवर्तित भट्ठा तैयार किया गया, उसमें छत की जगह ईंटों और रेत की एक परत चढ़ा दी गयी थी। स्थाई चिमनी की जगह गतिशील चिमनी लगा दी गई थी। बुल्स ट्रेंच किल्न ब्रिटिश इंजीनियरों और ठेकेदारों के लिए काफी मुफीद था। मौसमी भट्ठों के मुकाबले इसमें ईंधन कम लगता था, इसमें हॉफमैन के भट्ठे के मुकाबले शुरुआती खर्च कम होता था और इसमें ज्यादा बड़ी तादाद में ईंटें पकाई जा सकती थीं। बुल के आविष्कार ने गारा तैयार करने और पथाई की प्रक्रिया में कोई बदलाव नहीं किया। ये प्रक्रियाएं पहले की तरह हाथों पर आधारित और श्रम सघन प्रक्रियाएं बनी रहीं। बुल्स ट्रेंच किल्न ने मजदूरों को जुटाने, उनके काम के बंटवारे या भट्ठे पर कामों के क्रम में कोई बदलाव नहीं किया, जबकि ऐसे बदलावों से मजदूरों का सशक्तिकरण हो सकता था। इसके विपरीत, उसने भट्ठों में काम को और ज्यादा विभाजित करके मजदूरों के संगठित होने की क्षमता व संभावनाओं को पहले से भी ज्यादा कुंद कर दिया था। बुल्स ट्रेंच किल्न ने 'पुराने विशाल फायरिंग गैंग्स/जत्थों को अल्पकुशल लोडरों और ज्यादा कुशल, मगर थोड़े-से जलैयों/फायरमेन में बांट दिया था।"

63 Daniel R. Headrick (1979) discusses the history of the development of the technology of fire arms arguing that the history of imperialism is intertwined with the developments in the art of war. He says, "Technology of firearms progressed from the muzzle-loading smoothbore musket with a bayonet; to rifles; to the introduction of percussion cap; to the development of cylindro-conoidal bullet; to the replacement of Brown Bess with the Enfield by the British; to the replacement of paper cartridge by a brass cartridge that held the bullet, powder and cap together; to the introduction of Snider-Enfield; to the invention of smokeless explosives; to the development of Cordite; to the invention of the magazine and the repeating mechanism; to the development of machine gun." pp. 256

Table 2: **Statement Showing the Expenditure Incurred in the Irrigation Branch, North-Western Provinces and Oudh, for the Official Year 1882–83**

III. PRODUCTION AND DISTRIBUTION

D. IRRIGATION

II. Statement showing the expenditure incurred in the Irrigation Branch, North-Western Provinces and Oudh, for the official year 1882–83

Details	Total of each canal			Total of each class		
	Original works	Repairs	Total	Original works	Repairs	Total
A. – IMPERIAL	Rs	Rs	Rs	Rs	Rs	Rs
I – Famine Relief and Insurance						
Betwa Canal	660,531	...	660,531	...	...	...
Total	660,531	...	660,531	660,531	...	660,531
Establishment	...	...	...	...	...	147,165
Tools and plant	...	...	...	...	...	45,356
Increase in suspense balances	...	...	...	...	...	26,425
Less receipts on capital account	...	...	...	...	...	-1,963
Total, famine relief and insurance	...	...	...	...	...	877,514
II – Agricultural Works						
Ganges Canal	...	4,858	4,858	...	...	...
Mr Bull's patents for brick burning	10,000	...	10,000	...	...	...
Total	10,000	4,858	14,858	10,000	4,858	14,858
Establishment	...	...	...	...	...	1,117
Total, agricultural works	...	...	...	...	...	15,975
III – Productive Public Works – Capital Accounts						
Ganges Canal	235,955	...	235,955	...	...	...
Lower Ganges Canal	760,088	...	760,088	...	...	...
Agra Canal	50,742	...	50,742	...	...	...
Eastern Jumna Canal	39,258	...	39,258	...	...	...
Total	1,086,043	...	1,086,043	1,086,043	...	1,086,043
Establishment	...	...	...	...	...	249,790
Tools and plant	...	...	...	...	...	-9,425
Decrease in suspense balances	...	...	...	...	...	-58,786
Less receipts on capital account	...	...	...	...	...	-555
Total, productive public works – capital account	...	...	...	...	...	1,267,067
Total, imperial	...	...	...	...	...	**2,160,555**
B. – PROVINCIAL						
I – Productive Public Works, Revenue Account						
Ganges Canal	115,762	299,581	415,843	...	...	...
Lower Ganges Canal	34,137	254,905	289,612	...	...	...

Agra Canal	25,804	88,572	114,376	...	...	...
Eastern Jumna Canal	18,470	78,087	96,557	...	...	...
Total	194,173	721,145	**916,388**	194,773	721,145	915,918
Establishment	...	...	...	...	...	928,402
Tools and plant	...	...	...	...	...	26,324
Revenue refunded	...	...	...	...	...	3,424
Total, productive public works, revenue account	...	...	...	...	...	**1,874,068**
II. – Works Not Classed on Productive Public Work, Capital Account						
Dun Canals	...	...	...	...	...	...
Rohilkhand Canals	16,442	...	16,412	...	...	...
Bundelkhand Irrigation Survey	228	...	228	...	...	...
Sardsa Canal Survey	1,256	...	1,258	...	...	...
Cawnpore Branch Extension Survey, Lower Ganges Canal	3,659	...	5,639	...	...	...
Total	21,585	...	21,585	21,585	...	21,585
Establishment	...	...	...	...	...	10,984
Tools and plant	...	...	...	...	...	3,639
Increase in suspense balances	...	...	...	...	...	3,422
Total, works not classed as productive, capital account	...	...	...	...	...	**39,630**

Source: Report on the Administration of the North-West Province and Oudh, for the year ending 31st March 1883, Allahabad: North-Western Province and Oudh, Government Press. pp. 75

Table 3: **Abstract Indicating the Position of the Principal Factories in the North-Western Province and Oudh during the Year 1882–83**

Abstract indicating the position of the principal factories in the North-Western Province and Oudh during the year 1882–83

II Factories Maintained by Government

Description	District	Name	Nominal horse-power of engine	Average number of persons employed daily	Value of raw materials worked up (Rs)	Value of manufactured outturn (Rs)	Cost of factory to government (Rs)
Harness Factor	Cawnpore	Government harness factory	24	900	500,000	150,000	
Engineering Workshops	Aligarh	Post-office factory		896	142,846	261,499	32,766
	Roorkee	Canal foundry	47	859	418,000	705,000	
Jail Industries			No. of jails in which industry is pursued				

Class I		Aloe fibre making	7	56	89	965	
		Munj twine making	25	593	6,035	14,017	
		Rope making	14	125	1,063	2,709	
		Gunny-making	24	350	6,393	15,619	
		Net-making	3	6	94	226	
		Total	73	1,940	13,674	33,536	
Class II		Basket making	2	2	24	30	
		Cane work	3	12	279	484	
		Total	5	14	303	514	
Jail Industries Concluded							
Class III		Cloth weaving	47	715	42,064	60,475	
		Cotton factory	5	10	1,775	2,405	
		Tent making	1	16	6,136	8,182	
		Drugget (duri) making	45	584	21,650	40,391	
		Wood working	1	106	23,425	26,793	
		Spinning	8	127	10,043	12,036	
		Carpet (rug) making	40	951	41,500	1,08,617	
		Blanket making	46	456	24,019	30,823	
		Stocking-knitting	1	3	18	41	
		Tilory	9	44	11,336	13,954	
		Shuttlecock making	1	1	15	74	
		Total	104	3,070	205,681	305,800	
Class IV		Skin curing	1	4	177	441	
		Shoe making	7	13	1,477	1,974	
		Total	8	17	1,654	2,615	
Class V		Carpenter's shop	11	36	603	1,970	
		Blacksmith's shop	13	52	1,739	3,574	
		Goldsmith's shop	1	.1		2	
		Tin factory	2	4	258	488	
		Stool making	1	2	117	217	
		Total	23	94.1	2,717	6,247	
Class VI		Paper making	7	53	991	1,667	
Class VII		Lithography	4	22	883	1,311	

		Printing	2	36	6,637	18,804	
		Total	6	58	7,520	20,115	
Class VIII		Dyeing	13	51	12,564	17,760	
Class IX		Oil Pressing	28	42	5,812	8,918	
Class X		Lime grinding	2	7	712	1,025	
		Brick making	**10**	**132**	**7,706**	**16,312**	
		Pottery	13	142	3,767	8,961	
		Total	25	281	12,245	26,298	
Class XI		Bakery	5	47	9,805	12,153	
		Dairy	1	.03	75	139	
		Total	6	47.03	2,880	1,292	

Source: Table 11: Factories Maintained by Government, Production and Distribution, Report on the Administration of the North-West Province and Oudh, for the year ending 31st March 1883, Allahabad: North-Western Province and Oudh, Government Press. pp. 142–143

जलाई को एक कुशल कार्य और शेष कार्यों को अकुशल कार्यों की श्रेणी में रखने के लिए एक ऐसी स्थिति जरूरी थी जहां भट्ठे में होने वाले कामों के जाति आधारित बंटवारे को स्थापित किया जा सके और उसे जायज ठहराया जा सके।[64] जो गारा-मिट्टी में काम करेंगे, वे मामूली मजदूर होंगे; जो इससे साफ-सुथरा काम करेंगे, उन्हें और ऊपर की हैसियत मिलेगी; जो आग को संभालेंगे, वे सबसे ऊंचे पायदान पर खड़े होंगे। इस तरह, कामों का ब्राम्हणवादी, जातीय बंटवारा भट्ठों के श्रम विभाजन में भी दाखिल होता चला गया। यहां हमें एक घातक स्थिति दिखाई देती है। हम देखते हैं कि गारा तैयार करने वाले और पथाई वाले मजदूरों को पेशगी के आधार पर लाया जाता है जिसको चुकता करने के लिए उन्हें साल भर भट्ठों पर काम करना पड़ता है। इससे भी बढ़कर, धूल, धुएं, गर्मी, गंदी हवा में काम करने वाले औरतों, मर्दों और बच्चों यानी मजदूरों की सेहत की पूरी तरह उपेक्षा की जाती है। बुल्स ट्रेंच किल्न तकनीक भारत में इसलिए प्रचलित हुई क्योंकि यहां भट्ठों में किसी भी कीमत पर काम करने को तैयार मजदूरों की एक विशाल फौज मौजूद थी।

हमें यह समझना चाहिए कि बुल्स ट्रेंच किल्न क्यों और कैसे इतनी तेजी से फैलता गया, खास तौर पर अफगानिस्तान से लेकर बांग्लादेश तक के सारे मैदानी इलाकों में। आइए, इसके लिए डेनियल पी हेड्रिक द्वारा तकनीक के प्रसार पर की गई चर्चा को देखें। जैसा कि हम पीछे चर्चा कर चुके हैं, उपनिवेशों में तकनीक के स्थानांतरण से वहां अपरिहार्य रूप से औद्योगीकरण नहीं हुआ, बल्कि रहा-सहा औद्योगिक आधार भी नष्ट होता चला गया। उपनिवेशवादियों, औपनिवेशिक अधिकारियों ने जानबूझकर तकनीक को अपने साम्राज्य के एक औजार के तौर पर इस्तेमाल किया जिसके सहारे वे औपनिवेशिक प्रजा पर अपनी राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक वर्चस्व कायम कर सकते थे। इसके बाद तकनीक के प्रसाद की तीसरी अवस्था आती है जिसमें औपनिवेशिक जन उस तकनीक के उपभोक्ता बन जाते हैं[65](डेनियल आर हेड्रिक, 2010)। भारत में ऐसे लोगों की नई जमात ईंट उत्पादन में हावी होती चली गई जो परंपरागत रूप से इससे अलग थी। इन लोगों को बुल्स ट्रेंच किल्न तकनीक अपनाने में कोई गुरेज नहीं था। उन्हें तो न केवल ईंट बनाने की, बल्कि ईंटों को पकाने की तकनीक भी अंग्रेजों से ही मिली थी। साथ ही उन्होंने मजदूरों को इकट्ठा करने और जातियों के आधार पर काम बांटने का तरीका भी अंग्रेजों से सीख लिया था।

निष्कर्ष

भारत में अंग्रेजों ने ईंटों के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए सांगठनिक स्तर पर जो आविष्कार किए, वे एक स्तर पर केवल दिखावटी बदलाव थे। इयान जे कर ने काम की जिस व्यवस्था को 'व्यवस्थित,

64 Jan Lucassen, 2008, pp. 554

65 Daniel R. Headrick (2010) argues that technology is a double-edged sword, which turns back at the colonisers when the technologies are assimilated and used by the colonised people. He writes: "I have used India as a case study, both because it was the most important of the European colonial possessions, and because it illustrates the unpredictable consequences of innovations in communication technologies. The modernisation program that Dalhousie had instituted in India was designed to make Britain's presence on the subcontinent profitable and permanent. Instead, it undermined British rule. Historians attribute the decolonisation of India to a concept called nationalism and a change in the culture of India that united people from different regions and of different ethnicities and languages into one nationality. But what made nationalism possible in such a vast and culturally diverse land was the new communications media: the postal system, the railroads, the telegraph, the printing press, and the telephone. The increasing ability of Indians to acquire and disseminate ideas and information, using the very media of communication that the British had introduced, did not make British rule permanent, but undermined it instead."

तर्कसंगत, अनुशासित औद्योगिक गतिविधि' बताया है, वह असल में एक पतनशील उद्योग के सांगठनिक सिद्धांतों के आयात और फिर उनके विकृत क्रियान्वयन का उदाहरण था। अंग्रेज उपनिवेशकारों ने भारत में कृषि विकास, सिंचाई और रेलवे जैसी तकनीकों को तो लागू किया जो वास्तव में उनके आर्थिक और सैनिक हितों की रक्षा के साधन थे, मगर साथ ही उन्होंने सघन शोषण पर आधारित औद्योगिक व्यवस्था और श्रम प्रबंधन पद्धतियों का भी आयात किया ताकि अधिक से अधिक पूंजी संचय कर सकें। इयान जे कर ने रेलवे और ईंट भट्ठों में श्रम विभाजन को मार्क्सवादी दृष्टि से देखने की कोशिश भी की है और कहा है कि यह पूंजीवाद द्वारा जड़ें जमाने के दौरान सामने आने वाली स्थिति है। मजदूरों को पेशगी भुगतान, गैंगरों के तहत जत्थों में काम करने की प्रथा, गैंग्स को जाति के आधार पर संगठित करना, कामों का ऊपर से नीचे तक बंटवारा, ईकाई दर पर भुगतान वगैरह इस व्यवस्था की खासियतें थीं। यह सब अंग्रेज पूंजीपतियों की रणनीति का हिस्सा था जिसके तहत वे एक अल्पपूंजीवादी भारतीय क्षेत्र में अपने पैर फैला रहे थे। वे औपचारिक ढांचे के स्तर पर ईंट निर्माण उद्योग में कभी भी विशुद्ध पूंजीवादी ढंग से काम नहीं कर पाए क्योंकि औपनिवेशिक आविष्कार तथा तकनीक का प्रयोग करते हुए उन्होंने भारत की सामाजिक संरचनाओं और प्रथाओं-परंपराओं से किसी तरह की छेड़छाड़ नहीं की।

Bibliography

(1883), *Report on the Administration of the North West Province and Oudh, for the year ending 31st March 1883*, (Allahabad: North-Western Province and Oudh Government Press).

8.7Alliance (2017), *Global Estimates of Modern Slavery*, (Geneva: International Labour Organisation, Walk Free Foundation and International Organisation for Migration).

Bloodworth, A J, et al. (2001), *Brick Clay: Issues for Planning*, (British Geological Survey Commissioned Report CR/01/117N; London: The Queen's Printer and Controller of HMSO).

Rahman, A. (1981), 'The interaction between science, technology and society: historical and comparative perspectives', *International Social Science Journal*, Technology and Cultural Values Vol. XXXIII, No. 3 508-21.

Gunnupuri, Aarthi (2017), 'The horror of modern-day slavery in India's brick kilns', *Equal Times*.

Banerjee, Abhijit and Lakshmi Iyer (2005), 'History, Institutions, and Economic Performance: The Legacy of Colonial Land Tenure Systems in India', *The American Economic Review*, Vol. 95, No. 4 September 1190-213.

Banerjie, Ajita (2016), *Modern Day Slavery: A Study of Tribals and Dalits as Bonded Labour in Brick Kilns*, (Policy Report No. 18; Chennai: The Hindu Centre for Politics and Public Policy).

Cox, Alan (1997), 'A Vital Component: Stock Bricks in Georgian London', *Construction History Vol:13* (57-66.

Macfarlane, Alan (1993), 'Louis Dumont and the Origins of Individualism', *Cambridge Anthropology*, vol.16, no.1

Lopez, Alexander, et al. (2012), *Evaluating the Brick Industry in South Asia*, (Washington D.C.: The Carbon War Room, Johns Hopkins University SIAS).

Croitoru, Alin (2012), 'Schumpeter, J.A., 1934 (2008), The Theory of Economic Development: An Inquiry into Profits, Capital, Credit, Interest and the Business Cycle, translated from the German by Redvers Opie. New Brunswick (U.S.A) and London (U.K.): Transaction Publishers. A review to a book that is 100 years old', *Journal of Comparative Research in Anthropology and Sociology*, Volume 3, Number 2 137-48.

All India Brick & Tile Manufacturers Federation 'About Brick-Making and Brick Kilns', Sharma, Amit K. (2011), '"Fire-Carriages" of the Raj - The Indian Railway and its Rapid Development in British India', *Essays in History*, 5

Swamy, Anand V. (2010), 'Land and Law in Colonial India'.

Singh, Anant Nath (2014), 'Evaluating Energy Conservation Potential of Brick Production in India', *Labour File*, Vol: 9 No 1–2 47-49.

Major, Andrea (2010), '"The Slavery of East and West': Abolitionists and 'Unfree' Labour in India, 1820–1833', *Slavery & Abolition*, Vol. 31, No. 4 pp. 501-525.

Robertson, Andrew (1981), 'Introduction: technological innovations and their social impacts', *International Social Science Journal*, Technology and Cultural Values Vol. XXXIII, No. 3 431-46.

Quijano, Anibal and Peggy Westwell (1983), 'Imperialism and Marginality in Latin America', *Latin American Perspectives*, Vol. 10, No. 2/3, Social Classes in Latin America, Part II: Class Formation and Struggle 76-85.

Annette Susannah Beveridge (ed.) (1922), *The Babur-nama in English (Memoirs of Babur) Translated from the of original Turki Text ZahiruM-din Muhammad Babur Padshah Ghazi*, London: Luzac & Co.)

Quijano, Aníbal (1993), 'Modernity, Identity, and Utopia in Latin America', *boundary 2*, 20 (3), 140-55.

Quijano, Aníbal (2007), 'Coloniality and Modernity/Rationality', *Cultural Studies*, 21, Nos. 2 3 168-78.

Bhukuth, Augendra (2006), 'The brokerage system in the brick kiln industry in Tamil Nadu, India', *Forum for Social Economics*, 35:2 55-74.

B C Pumia, Ashok Kumar Jain, Arun Kumar Jain (2004), *Basic Civil Engineering*, (New Delhi: Laxmi Publicaations).

Wejnert, Barbara (2002), 'INTEGRATING MODELS OF DIFFUSION OF INNOVATIONS: A Conceptual Framework', *Annual Review of Sociology*, 28 297-326.

BBC (1950), '1950: India becomes a republic', *BBC News*, On This Day Skinder, Bhat Mohd, et al. (2014), 'Brick kiln emissions and its environmental impact: A Review', *Journal of Ecology and the Natural Environment*, Vol. 6 (1), 1-11.

Bonapace, Caterina and Valerio Sestini (2003), *Traditional Materials and Construction Technologies used in the Kathmandu Valley*, (Paris: United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisation).

Centre for Education and Communication (2004), *Debt Bondage in India: An Indicative Report*, (New Delhi: CEC).

Schmidt, Charles W. (2013), 'Modernizing Artisanal Brick Kilns', *Environmental Health Perspectives*, Volume 121 Number 8 A243-249.

Kosambi, D D (1970), *The Culture and Civilisation of Ancient India in Historical Outline*, (New Delhi: Vikas Publishing House Pvt Ltd).

Banaji, D R (1933), *Slavery in British India*, (First Thesis submitted to the University of Bombay for the Degree of Doctor of Letters; Bombay: D B Taraporevala Sons & Co.).

Basu, D.D., Nivit Kumar Yadav, and Rahul Kumar (2016), *National Brick Mission: A Scoping Paper*, (New Delhi: Centre for Science and Environment).

Singh, D.P. (2005), 'Women Workers in the Brick Kiln Industry in Haryana, India', *Indian Journal of Gender Studies*, 12 83-97.

Headrick, Daniel R. (1979), 'The Tools of Imperialism: Technology and the Expansion of European Colonial Empires in the Nineteenth Century', *The Journal of Modern History*, Vol. 51, No. 2 231-63.

Headrick, Daniel R. (1981), *The tools of empire : technology and European imperialism in the nineteenth century*, (New York: Oxford University Press) 221.

Headrick, Daniel R. (1988), *The Tentacles of Progress: Technology Transfer in the Age of Imperialism, 1850-1940*, (Oxford University Press).

Headrick, Daniel R. (2009), *Technology: A World History*, (New York: Oxford University Press) 183. Headrick, Daniel R. (2010), 'A Double-Edged Sword: Communications and Imperial Control in British India', *Historical Social Research*, Vol. 35 No. 1 51-65.

Headrick, Daniel R. (2012), 'Power over Peoples: Technology, Environments, and Western Imperialism, 1400 to the Present', *Introduction* (Princeton University Press), 1-10.

O'Sullivan, David and Lawrence Dooley (2008), *Applying Innovation*, (California: Sage Publications).

Development Alternatives (2012), *Status of Brick Sector In The State of Bihar - A Baseline Study*, (New Delhi: Development Alternatives).

Chakrabarty, Dipesh (1993), 'Bonded Histories: Genealogies of Labor Servitude in Colonial India by Gyan Prakash', *American Ethnologist*, Vol. 20, No. 2 414-15.

Peers, Douglas M. (2007), 'Gunpowder Empires and the Garrison State: Modernity, Hybridity, and the Political Economy of Colonial India, circa 1750–1860', *Comparative Studies of South Asia, Africa and the Middle East*, Vol-27, No.2 243-56.

Rai, Durgesh C. and S. Dhanapal (2013), 'Bricks and mortars in Lucknow monuments of c. 17–18 century', *Current Science*, Volume 104, Number 2 238-44.

Thurston, Edgar and K Rangachari (1909), *Castes and Tribes of Southern India*, (Volume III-K; Madras: Government Press).

Dobson, Edward (1882), *A rudimentary treatise on the manufacture of bricks and tiles : containing an outline of the principles of brickmaking*, (Weale's Rudeimntary Scientific and Educational Series, London: Crosby Lockwood).

Whitcombe, Elizabeth (1972), *Agrarian Conditions of Northern India*, (California: University of California Press) 330.

Whitcombe, Elizabeth (1986), 'Reviewed Work(s): Canal Irrigation in British India: Perspectives on Technological Change in a Peasant Society. by Ian Stone', *The Journal of Asian Studies*, Vol. 45, No. 4 August pp. 892-894.

Whitcombe, Elizabeth (1993), 'Famine Mortality', *Economic and Political Weekly*, Vol. 28, No. 23 June 5 pp. 1169-1173+1175.

Baum, Ellen (2010), 'Black Carbon from Brick Kilns', *Clean Air Task Force*,

Stokes, Eric (1973), 'First Century of British Colonial Rule in India: Social Revolution or Social Stagnation?', *Past and Present*, No.58 136-60.

Food and Agricultural Organisation of the United Nation (1993), *Status and Development Issues of the Brick Industry in Asia*, (Field Document No.35; Bangkok: FAO Regional Wood Energy Development Programme in Asia).

GATE 'Bull's Trench Brick Kiln', *Wall Building: Technical Brief.*

Blyn, George (1975), 'Review of Agrarian conditions in Northern India / Elizabeth Whitcombe', *Economic Development & Cultural Change*, Vol. 23 Issue 2, January pp p367-71.

Harris, George Frederick (1897), *The science of brickmaking : with some account of the structure and physical properties of bricks*, (London: H. Greville Montgomery).

SHANI, Giorgio (2006), 'Empire, Liberalism and the Rule of Colonial Difference: Colonial Governmentality in South Asia', *Ritsumeikan Annual Review of International Studies*, Volume 5 19-36.

Global and Oxford Economics (2015), *Global Construction 2030*, (Global Construction Perspectives and Oxford Economics).

Punjab, Government of (1911), *A Glossary of the Tribes and Castes of the Punjab and North-West Frontier Province*, (Based on the Census Report for the Punjab, 1883, by the late Sir DENZIL. IBBETSON, K-CSL, and the Census Report for the Punjab, 1892, by the Hon. Mr. E. D. MacLAGAN, C.S.I., and compiled by H. A. ROSE. Volume II A-K; Lahore: Civil and Military Gazette Press).

(2014), *Fact Sheets about Brick Kilns in South and South East Asia*, eds. Greentech Knowledge Solutions and Swiss Agency for Development and Cooperation SDC, (New Delhi: Greentech Knowledge Solutions Pvt. Ltd.).

GreenTech, Clean Air Task Force, entec, EnZen (2012), *Brick Kilns Performance Assessment: A Roadmap for Cleaner Brick Production in India*, (New Delhi: Shakti Sustainable Energy Foundation and ClimateWorks Foundation).

Prakash, Gyan (1990), *Bonded Histories: Genealogies of Labour Servitude in Colonial India*, (Cambridge: Cambridge University

Press).

Prakash, Gyan (1999), *Another Reason: Science and the Imagination of Modern India*, (New Jersy: Princeton University Press) 304.

Risley, H H (1891), *The Tribes and Castes of Bengal*, (Ethnographic Glossary Vol.I; Calcutta: Bengal Secretariat Press).

Meena, Hareet Kumar (2015), 'The Impact of British Rule on Indian Villages', *American International Journal of Research in Humanities, Arts and Social Sciences*, 12 (1), 94-98.

Vyas, Harish, Alka Vyas, and Rizwana Khan (2009), 'A Study of Land Degradation Due to Brick Industries in Ujjain (India)', *Journal of Environmental Research And Development*, Vol. 3 No. 4 1174-77.

Human Rights Watch (1996), *The Small Hands of Slavery: Bonded Child Labor In India*, (New York, Washington, London, Brussels: Human Rights Watch).

Hawksley, Humphrey (2014), 'Why India's brick kiln workers 'live like slaves'', *BBC News*, 2014 Kerr, Ian J. (1995), *Building the railways of the Raj, 1850-1900*, (New Delhi: Oxford University Press) 254

Stone, Ian (2002), *Canal Irrigation in British India: Perspectives on Technological Change in a Peasant Society*, (Cambridge: Cambridge University Press) 362.

IBEF (2017), *Real Estate*, (New Delhi: India Brand Equity Foundation).

International Labour Office 'What is forced labour, modern slavery and human trafficking', Massa, Isabella (2015), *Technological change in developing countries: Trade-offs between economic, social, and environmental sustainability*, (Vienna: United National Industrial Development Organisation (UNIDO)).

J B Gilchrist, LLD (1825), *The General East India Guide Vade Mecum : For the Public Functionary, Government Officer, Private Agent, Trader or Foreign Sojourner, In British India And the Adjacent Parts of Asia*, (London: Kingsbury, Parbury & Allen) 235-36.

John, J (2014), 'Brick Kilns and Slave Labour: Observations from Punjab', *Labour File*, Vol 9. No.1-2 15-26.

Fergusson, James (2015), 'Chapter 1.2: Indian Saracenic Architecture (Extracts from History of Indian Eastern Architecture, London, 1876 pp489-93, 557-68)', in Monica Juneja (ed.), *Architecture in Medieval India: Forms, Contexts and Histories* (Ranikhet: Permanent Black), 122-32.

Lucassen, Jan (2008), 'Brickmakers in Western Europe (1700-1900) and Northern India (1800-2000): Some Comparisons', in Jan Lucassen (ed.), *Global Labour History: A State of the Art* (Amsterdam: Peter Lang), 513-72.

Gupta, Jayoti (2003), 'Informal Labour in Brick Kilns: Need for Regulation', *Economic and Political Weekly*, Vol. 38, No. 31 3282-92.

Hurd, John and Ian J. Kerr (2012), *India's Railway History: A Research Handbook*, (Leiden. Boston: Brill) 336.

Keay, John (2010), *India: A History*, (New York: Grove Press).

Dicks, Jonathan (2015), 'A Brief History of the Rowland's Castle Brick & Tile Works', Version 2

Holley, Jr. I. B. (2009), 'The Mechanisation of Brickmaking', *Technology and Culture*, Vol. 50, No. 1 82-102.

Whitehead, Judith (2012), 'John Locke, Accumulation by Dispossession and the Governance of Colonial India', *Journal of*

Contemporary Asia, Vol. 42, No. 1 1-21.

Singh, K. S. (1998), *India's Communities*, (People of India National Series, IV & V; New Delhi: Archeological Survey of India) 117-18 & 2382.

Marx, Karl (1853), 'The British Rule in India', *New-York Daily Tribune*, 1853

Watt, Kathleen Ann (1990), 'Nineteenth Century Brickmaking Innovations in Britain: Building and Technological Change', (The University of York; The Institute of Advanced Architectural Studies).

Koy Thomson, et al. (2005), *Bolangir to Hyderabad and the Politics of Poverty: The choice of death in paradise of life in hell*, (Critical Stories of Change; London: Action Aid International).

KPMG (2015), *Challenging the tides: Indian real estate: Analysis of the new development concepts and investment trends changing the course of Indian real estate*, (Building, Construction & Real Estate; kpmg.com/in).

Karmakar, Krishna. G. (2015), 'Colonial Rule and Its Effects on India's Rural Economy', *Journal of South Asian Studies*, 03 (03), 277-88.

Gordon, Leonard A. (1992), 'Prakash Gyan, Bonded Histories: Genealogies of Labor Servitude in Colonial India. New York: Cambridge University Press, 1990. xvi + 250 pp.', *International Labor and Working-Class History*, Volume 42 137-38.

Naimi, Linda L. and Richard Mark French (2009), 'The Unintended Consequences of Technological Innovation: Bluetooth Technology and Cultural Change', Feister, Lois M. and Joseph S. Sopko (1996), '18th- and Early 19th-Century Brickmaking at the John Jay Homestead: The Process, Products, and Craftsmen', *Northeast Historical Archaeology*, Vol. 25 Article 6 55-68.

Maddison (1971), 'The Economic and Social Impact of Colonial Rule in India', *Chapter 3, Class Structure and Economic Growth: India & Pakistan since the Moghuls*.

Moldaschl, Manfred (2010), *Why Innovation Theories Make no Sense*, (Papers and Preprints of the Department of Innovation Research and Sustainable Resource Management (BWL IX) No. 9/2010; Chemnitz: Chemnitz University of Technology).

Dingwaney, Manjari (1985), 'Unredeemed promises: The law and servitude', in Utsa Patnaik and Manjari Dingwaney (eds.), *Chains of Servitude, Bondage and Slavery in India* (Madras: Sangam Books), 273-347.

Dingwaney, Manjari (1985), 'Unredeemed Promises: The Law and Servitude', in Utsa Patnaik and Manjari Dingwaney (eds.), *Chains of Servitude: Bondage and Slavery in India* (Madras: Sangam Books), 284-347.

Husain, Md Hamid and Firoj High Sarwar (2012), 'A Comparative Study of Zamindari, Raiyatwari and Mahalwari Land Revenue Settlements: The Colonial Mechanisms of Surplus Extraction in 19th Century British India', *Journal of Humanities and Social Science*, Volume 2 Issue 4 16-26.

DIACONU, Mihaela (2011), 'Technological Innovation: Concept, Process, Typology and Implications in the Economy', *Theoretical and Applied Economics*, Volume XVIII, No. 10 (563), 127-44.

Desai, Miki and Madhavi Desai (2011), 'The colonial bungalow in India', *The Newsletter (IIAS)*, No.57 26-27.

Mines & Geology Department (2016), 'List of all working Brick Kilns in Bihar across its various districts'.

Mines & Geology Department (2016), 'Status of Payments/Action Taken against illegal Brick Manufacturers for the Brick Season 2014-15.'

Juneja, Monica (2015), 'Introduction', in Monica Juneja (ed.), *Architecture in Medieval India: Forms, Contexts and Histories* (Ranikhet: Permanent Black), 1-105.

Mujeeb, Muhammad (2015), 'The Qutub Complex as a Social Document', in Monica Juneja (ed.), *Architecture in Medieval India: Forms, Contexts and Histories* (Ranikhet: Permanent Black), 290-308.

Majumdar, N. C. (1957), 'Firing of Bull 's Trench Kilns', Indian Builder.

Vasudevan, N. 'Good Practices Inventory: Adaptation of vertical shaft brick kiln (VSBK) technology for Indian brick industry'.

Kant, Nalini (2006), 'Human Cost of Making Bricks', eSS Working Paper/Labour.

Ateeq, Nasir and J John (2003), 'Migrant Labour in the Brick Kilns of Punjab', in Gopal Iyer (ed.), Migrant Labour and Human Rights in India (New Delhi: National Human Rights Commission).

National Human Rights Commission (2009), '58 bonded labourers and 123 members of their families got released by NHRC spot investigation teams in Haryana'.

National Human Rights Commission (2009), 'NHRC spot investigations lead to the identification of 25 bonded labourers in Greater Noida', National Human Rights Commission (2009), 'NHRC spot investigations lead to the identification of 58 bonded labourers in Haryana'.

Nikhil Haridas, Shijith Ajith Kumar, Vinod Kumar Nerella, Deepika M G, Amalendu Jyotishi (2012), Measuring Technical Efficiency in Tea Plantations in India: A Panel Data Analysis, (Working Paper No.132/2012; Coimbatore: Amrita School of Business, Amrita Vishwa Vidyapeetham).

OECD and Eurostat (2005), The Measurement of Scientific and Technological Activities: Oslo Manual: Guidelines for Collecting and Interpreting Innovation Data, (Third Edition; Oslo: OECD).

Wainwright, Oliver (2014), 'Blood bricks: how India's urban boom is built on slave labour', The Guardian, 2014

Ghoshal, Pallab Kanti (2008), Prospects and Problems of Brick Industry, (New Delhi: Mittal Publications) 167.

Sweezy, Paul M. (1943), 'Professor Schumpeter's Theory of Innovation', The Review of Economics and Statistics, Vol. 25, No. 1 93-96

Spear, Percival (2002), 'Delhi: A Historical Sketch', *The Delhi Omnibus* (New Delhi: Oxford University Press), 1-269.

Hasan, Perween (2015), 'Temple Niches and Mihrābs in Bengal', in Monica Juneja (ed.), *Architecture in Medieval India: Forms, Contexts and Histories* (Ranikhet: Permanent Black), 439-47.

Robb, Peter (1990), 'Ideas in Agrarian History: Some Observations on the British and Nineteenth-Century Bihar', *The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, No. 1 17-43.

Sasvari, Peter (2012), 'The Effects of Technology and Innovation on Society', *Bahria University Journal of Information & Communication Technology*, Vol. 5, Issue 1 1-10.

Pollution Control Board, UP (2017), 'District wise updated Status of identified Brick Kilns in the State of U.P. in Compliance of the Order dated- 01.05.2014 of Hon'ble High Court in PIL-20773/2014 Sumit Sing Vs State of U.P. & Others.'.

Prayas Centre for Labour Research and Action, 'Migrant Labour at Brick Kiln in Andhra Pradesh: A Human Rights Perspective'.

Grosfoguel, Ramón (2007), 'The Epistemic Decolonial Turn: Beyond political-economy paradigms', *Cultural Studies*, Vol. 21, Nos. 2-3 211 223.

Grosfoguel, Ramon (2016), 'What is Racism?', *Journal of World-System Research*, Vol. 22 Issue 1 9-15.

Grosfoguel, Ramón (2009), 'A Decolonial Approach to Political-Economy: Transmodernity, Border Thinking and Global

Coloniality', *Kult 6 - Special Issue*, Epistemologies of Transformation: The Latin American Decolonial Option and its Ramifications 10-38.

Srivastava, Ravi S. (2015), *Bonded Labour in India: Its Incidence and Pattern*, (InFocus Programme on Promoting the Declaration on Fundamental Principles and Rights at Work; Geneva: International Labour Office).

Bharati, Rituraj 'Brick and Brick Sizes as a Tool to Find History',

Rizwana Khan and Harish Vyas (2008), 'A Study of Impact of Brick Industries on Environment and Human Health in Ujjain City (India)', *Journal of Environmental Research And Development*, Vol. 2 No. 3

Lucas, Robin (1997), 'The Tax on Bricks and Tiles, 1784-1850: its Application to the Country at large and, in particular, to, the County of Norfolk', *Construction History Vol:13* (29-55. Dutt, Romesh (1908), *The Economic History of Indian in the Victorian Age*, (London: Kegan Paul, Trench, Trubner & Co. Ltd.) 628.

ZALEWSKI, Romuald I. and Eulalia SKAWIŃSKA (2009), 'Impact of technological innovations on economic growth of nations', *Systemics, Cybernetics and Informatics*, Volume 7 - Number 6 35-40.

Fletcher, Ronald (1988), *The Abolitionists: The Family and Marriage Under Attack*, (London, New York: Routledge).

Davies, S. W. (1971), 'The Clay Brick Industry and the Tunnel Kiln', *National Institute Economic Review*, No. 58 November pp. 54-71.

Davies, S. W. (1971), 'The Clay Brick Industry and the Tunnel Kiln', *National Institute Economic Review*, No. 58 54-71.

Maithel, Sameer (2013), 'Evaluating Energy Conservation Potential of Brick Production in India: A Report Prepared for the SAARC Energy Centre, Islamabad'.

Maithel, Sameer, Sonal Kumar, and Dheeraj Lalchandani (2014), *Factsheet about Bricks Kilns in South and South East Asia*, (New Delhi: Greentech Knowledge Solutions Pvt. Ltd.).

Sameer Maithel, R. Uma (2012), *Brick Kilns Performance Assessment: A Roadmap for Cleaner Brick Production in India*, (New Delhi: Shakti Sustainable Energy Foundation and Climate Works Foundation Supported Initiative).

Amin, Samir (2017), 'From Bandung (1955) to 2015: Old and New Challenges for the States, The Nations and The Peoples of Asia, Africa and Latin America', *Interventions: International Journal of Postcolonial Studies*, Volume 19, Issue 5: Progress Change Development 609-19

Samuel Hall Research & Strategy (2011), *Buried in Brick Kilns: A Rapid Assessment of Brick Kilns in Afghanistan*, (Geneva: International Labour Organisation).

Sarath K. Guttikunda, Bilkis A. Begum, Zia Wadud (2012), 'Particulate pollution from brick kiln clusters in the Greater Dhaka region, Bangladesh', *Air Qual Atmos Health*, DOI 10.1007/s11869-012-0187-2

Marla, Sarma (1981), *Bonded Labour in India: National Survey on the Incidence of Bonded Labour - Final Report, January 1981*, (Sponsored by: Gandhi Peace Foundation & Academy of Gandhian Studies; New Delhi: Biblia Impex Private Ltd.).

Barik, Satyasundar (2014), 'Bonded to brick kilns, migrants from Odisha may forfeit vote', *The Hindu*, 2014

Sidapur, Sharanappa (2012), 'Informal Brick Industry in the North Karnataka - Flourish or Perish', *Arth Prabandh: A Journal of Economics and Management*, Vol.1 Issue 8 87-97.

Chandra, Siddharth (2001), 'American Sugar Kingdom: The Plantation Economy of the Spanish Caribbean, 1898-1934 (review)',

Technology and Culture, Volume 42, Number 2 pp352-354.

Sir John Marshall (ed.) (1931), *Mohenjo-Daro and the Indus Civilisation: Being an account of Archeological Excavations at Mohenjo-Daro carried out by the Government of India between the years 1922 and 1927*, Vol II: Text. Chapters XX-XXXII; London: Arthur Probsthain)

Sir John Marshall (ed.) (1931), *Mohenjo-Daro and the Indus Civilisation: Being an account of Archeological Excavations at Mohenjo-Daro carried out by the Governemnt of India between the years 1922 and 1927*, I: Text. Chapters I-XIX and Plates I-XIV; London: Arthur Probsthain)

Sir Ziauddin Ahmad (1943), *Indian Railways*, (Lahore).

Naveen, Siriman (2016), 'Production and Marketing Network Chain of Brick Kiln Product: A Case Study of Hyderabad City', *International Journal of Managing Value and Supply Chains (IJMVSC)*, Vol. 7, No. 1 27-37.

Dale, Stephen F. (1978), 'The Peasant and the Raj. Studies in Agrarian Society and Peasant Rebellion in Colonial India. by Eric Stokes', *Pacific Affairs*, Vol. 51, No. 4 pp. 670-671.

Suman Kumar Pariyar, Tapash Das, Tanima Ferdous (2013), 'Environment And Health Impact For Brick Kilns In Kathmandu Valley', *International Journal of Scientific & Technology Research*, Volume 2, Issue 5 184-87.

Suneel Padale and Aditi Sinha (eds.) (2012), *Wage Labour Atlas of Brick Kiln Workers*, Prayas Centre for Labour Research and Action (PCLRA) Team, Supported by the Aga Khan Foundation through the European Union funded SCALE Programme; New Delhi: Aga Khan Foundation).

Ali, Syed Akhtar (2017), 'Brick kiln industry', *Business Recorder*, 2017 January 16.

Holland, T H (1918), *The Indian Industrial Commission 1916-18*, (Calcutta: Superintendent, Government Printing, India).

Gupta, T. N. (ed.) (1998), *Building Materials in India: 50 Years; a Commemorative Volume*, New Delhi: BMTPC, Building Materials and Technology Promotion Council, Ministry of Urban Affairs & Employment, Government of India) 536. (1998) 'Burnt Clay Brick and Tiles', in Gupta, T. N. (ed.), *Building Materials in India: 50 Years; a Commemorative Volume* (New Delhi: BMTPC, Building Materials and Technology Promotion Council, Ministry of Urban Affairs & Employment, Government of India), 536.

Ritchie, T. (1980), 'A History of the Tunnel Kiln and Other Kilns for Burning Bricks', *Bulletin of the Association for Preservation Technology*, Vol. 12, No. 3 46-61.

Sarkar, Tanika (1985), 'Bondage in the Colonial Context', in Utsa Patnaik and Manjari Dingwaney (eds.), *Chains of Servitude: Bondage and Slave*

Technology Informatics Design Endeavour (2003), *Final Report on the Brick Kilns Identified Under EP Act*, (Bangalore: Environmental Management & Policy Research Institute)

Boswell, Terry (1989), 'Colonial Empires and the Capitalist World-Economy: A Time Series Analysis of Colonisation, 1640-1960', *American Sociological Review*, Vol. 54, No. 2 pp. 180-196.

Metcalf, Thomas (1992), 'Bonded Histories: Genealogies of Labor Servitude in Colonial India by Gyan Prakash', *Ethnohistory,* Vol. 39, No. 1 69-71.

Metcalf, Thomas R. (1962), 'The British and the Moneylender in Nineteenth-Century India', *The Journal of Modern History*, Vol. 34, No. 4 December pp. 390-397.

Metcalf, Thomas R. (1962), 'The Struggle Over Land Tenure in India, 1860-1868', *The Journal of Asian Studies*, Vol. 21, No. 3

May pp. 295-307.

Metcalf, Thomas R. (1979), 'Rural Society and British Rule in Nineteenth Century India. The Peasant and the Raj: Studies in Agrarian Society and Peasant Rebellion in Colonial India. by Eric Stokes', *The Journal of Asian Studies*, Vol. 39, No. 1 November pp. 111-119.

Metcalf, Thomas R. (1995), *Ideologies of the Raj*, (New Cambridge history of India III.4; Cambridge: Cambridge University Press) 224.

Metcalf, Thomas R. (2014), 'Liberalism and Empire', *Journal of the History of Ideas*, Volume 75, Number 4 October 687-95.

Chakravarti, Uma (1985), 'Of Dasas and Karmakaras: Servile Labour in Ancient India', in Utsa Patnaik and Manjari Dingwaney (eds.), *Chains of Servitude: Bondage and Slavery in India* (Madras: Sangam Books), 35-75.

UNIDO (1968), 'The Development of Clay Building Materials Industries in Developing Countries', *Report of the Inter-regional Seminar of Clay Building Materials Industries: August 18-25, 1968*, August

Heierli, Urs and Sameer Maithel (2008), *Brick by brick: the Herculean task of cleaning up the Asian brick industry*, (Berne: Swiss Agency for Development and Cooperation (SDC), Natural Resources and Environment Division).

Rai, Usha (2014), 'Breaking the cycle of bondage', *The Tribune India*, 2014

Vakulabharanam, Vamsi (2013), 'Building blocks of servitude', *The Hindu*, 2013 sec. Opinion

Brun, Viggo (2013), 'Fired Earth: Bricks, Kilns and Workers in Kathmandu Valley. Kathmandu: Himal Books.', *Studies in Nepali History and Society*, 18 (1), 179-85.

Nemade, Vijay V. (2014), 'Musculoskeletal disorders in Brick kiln workers: Incidence and effectiveness of workers education program', *IJSR - International Journal of Scientific Research*, Volume 3, Issue 12 1-3.

Gidwani, Vinay Krishin (1992), ''Waste' and the Permanent Settlement in Bengal', *Economic and Political Weekly*, Vol. 27, No. 4 PE39-46.

Singh, Vipul (2014), 'Gangetic Floods: Landscape Transformation, Embankments, and Clay Brick-Making', in Ursula Münster, Shiho Satsuka, and Gunnel Cederlöf (eds.), *Asian Environments: Connections across Borders, Landscapes, and Times: RCC, Perspectives No.3* (Munich: Rachel Carson Centre), 23-28.

Crooke, W. (1896), *The Tribes and Castes of North Western Provinces and Oudh*, (Volume III; Calcutta: Office of the Superintendent of Government Printing, India).

Walk Free Foundation (2016), *Global Slavery Index 2016*, (Australia: The Minderoo Foundation Pty Ltd).

Ackermann, Werner (1981), 'Cultural Values and Social Choice of Technology', *International Social Science Journal*, Technology and Cultural Values Vol. XXXIII, No. 3 447-65.

World Bank (2011), *Introducing Energy-efficient Clean Technologies in the Brick Sector of Bangladesh*, ed. Environment, Climate Change, and Water Resources Unit South Asia Region, (Report No. 60155-BD; Washington D. C.: The World Bank, Energy Sector Management Assistance Program (ESMAP)).